उठो ! जागो !!

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

उठो! जागो!

साहित्य-परामर्शक **मुनि बुद्धमल्ल**

अनुवादक

मुनि मोहनलाल 'शार्दूल'

भगवान् महावीर की पचीसवी निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में

मूल्य चार रुपये / द्वितीय सस्करण, १६७४/प्रकाशक : कमलेश चतुर्वेदी, प्रबन्धक, आदर्श साहित्य सघ, चूरू (राजस्थान)/अर्थ-सौजन्य : महालचन्द रायचन्द कोठारी, छापर (राजस्थान)/मुद्रक रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

FOREWORD

I have very great pleasure in recommending this book for study by all sections of the community, particularly by the youth, of our nation The book consists of 71 literary pieces on various topics About 54 of them relate to advise to the youth Others are apparently descriptive of scenes from nature The water-falls, the moth and the ocean have their own lessons to give to the youth The main theme behind the work is encouragement of the youth to grow to his full stature The stories are full of hope and give encouragement and they have a moral and a spiritual value to the youth The object is to inculcate into their minds that they are the architects of their own destinies and that they should never get depressed by any event however damaging it might be Their life must be one of service and sacrifice

The original pieces are written in easy flowing elegant Sanskrit prose The translation has been done by Muni Sri Mohanlalji who is another disciple of Acharya Sri Tulsi, in equally simple language

Muni Sri Buddh Mallji, the author, is one of the fore-

most disciples of Acharya Sri Tulsi, the well-known author of Anuvrat Movement Muni Sri Buddh Mallji is a great Sanskrit scholar He has written a number of books in Sanskrit Since his youth he has dedicated himself to serve humanity He is a great writer and an Ashu Kavi I am sure that the main theme of the work 'Improve Thyself O ! Youth' will catch the imagination of the youth of the present day and make them heroes and heroines of the land and enable them to take their proper place in Society

National consolidation aud economic prosperity are the needs of the hour The youth of the previous generation won freedom for the country and the task before the youth of the present generation is to maintain that freedom by consolidating the nation and giving economic content to that freedom Their task is heavy and it requires courage and enthusiasm besides a strong faith in spiritualism to solve the many problems that face our land, hunger, starvation, disease and ignorance I hope and trust that this book will serve its purpose of infusing a spirit of service and sacrifice into the youth of the present generation

New Delhi —**M. Ananthasayanam Ayyangar**

July 14, 1958

स्वकथ्यम्

जीवनस्यास्मिन् प्रलम्बे पथि प्रयान्त प्रत्येक पान्थ यथावसरमाशोत्सा-होल्लासाना मणीवकानि निजमृदुलसस्पर्शेन यथा सभाजयन्ति, तथैव निराशा-प्रमाद-विषादाना कण्टका अपि निजनिष्ठुरतैक्ष्णतया वेधयन्ति। मणीवकानि यत्र निजरूपगन्धादिभिरात्मान प्रीणयन्ति कण्टकास्तत्र वेधन-पीडनादिभिस्तमुत्तापयन्ति।

कुसुमकण्टकौ स्वस्वस्थाने अद्वितीयता बिभ्राणावपि परस्परमेकान्ततो विरुद्धौ, तथापि पथिकाय उभावपि समानरूपेणाऽनिवार्यौ। दूरलक्ष्योऽसौ पथिक स्वभावतो हि मार्गे सुगमतासर्जक प्रसून स्निह्यति, दुर्गमताकरण प्रवणाय कण्टकाय चासूयति। लक्ष्यावाप्तये कृतसकल्पत्वात् सत्वर निरन्तर च गच्छन् पान्थ प्रसून निजकार्यसिद्धौ साधकम्, कण्टक च बाधक मनुते।

प्रत्येक पान्थोऽभिलषति, यत् तस्य पन्था प्रसूनमय एव स्यात्, एकोपि कश्चित् कण्टकस्तत्र न स्यात्, परन्तु प्रकृतिरेतन्नाभिकाङ्क्षति, अत इतरमार्गाभावात् पुष्पै सह कण्टकानामनुभवोपि तदर्थमनिवार्य समजनि।

उभयानुभवानिवार्यतायामपि पान्थस्य मनस्येकेयमीहोदयते, यत् स्मृतिकोशे केवल पुष्पाणाममल परिमल एव स्थितिमवाप्नुयात्, कण्टकानामनिष्ट कष्ट च तत्काल विस्मृतिगर्ते विलीनता यायात्। किन्तु न तस्यैषेहा पूर्णा भवति, बहुधा एतस्माद् विपरीत स घ्राणतर्पण सुरभि तु विस्मरति, शल्ययन्त्रणां च विस्मर्त्तुमना अपि नहि स्मृति कोशाद् बहिष्कर्त्तुमर्हति।

एतदित्थमपि स्याद्, यन् मणीवकानामिष्टसस्पर्शे तस्याधि-

कारमनीषा समुन्मीलति, अतस्तत्प्राप्तौ न कथमपि गणनभावनोदेति, किन्तु कण्टकानामल्पतमस्पर्शमपि अनधिकारचेष्टित मन्वान. स तमनिष्टसयोगमविस्मृत्या गणयति। अतएव प्रत्येक पथिक प्राय इत्थमेवानुभवति, यल्लक्ष्यमुपतिष्ठमानेस्मिन् जीवनपथे कण्टकानामेवाधिक्य चकास्ति, कुसुमानि तु तत्र विरलान्येव विलोक्यन्ते।

यत् किमप्यस्तु, परमेतन्निश्चित भाति, यदधिकशो मनुष्या कुसुमकोमलपथानुसरणस्वप्नमेव विलोकन्ते, किन्त्वचिन्त्यरूपेण तत्र कण्टकानुभूतिविवशताया तेषा स्वप्नभङ्ग सजायते। परन्त्वेतेन किम् ? प्रकृतिसाम्राज्ये तु कुसुमकण्टकयो समानमेवास्तित्वमस्ति, सा यावता प्रेम्णा प्रसून पुष्णाति, तावतैव कण्टकम्। 'कुसुमकण्टकौ' 'कण्टककुसुमौ' इति वाक्यद्वय्या सा समानमेव बलमाकलयति।

मनुष्यो जीवनपथे विकीर्णाना निराशा-प्रमाद-विषादादिकण्टकानामाक्रोशे यावती शक्ति व्येति, तावतीमेव तदुत्पादिताऽकर्मण्यताप्रतिकारे चेद् व्ययीकुर्यात् ततो नहि किमपि कार्यमपूर्णमवशिष्यात्, न च किमपि लक्ष्यमप्राप्यम्। नहि मार्गगता सर्वेपि कण्टका कस्यापि पथिकस्य चरणवेधक्षमा भवन्ति। सहस्रेषु कश्चिदेकस्तादृशो भवेत्। ततस्तस्यैकस्यैतावतो दुखानुभवात् तु एतदेव श्रेयसे स्याद् यत् पर सहस्राणा तत्पूर्वं निर्बाधमुल्लङ्घिताना तेषामुत्सव एव कृत स्यात्। उत्पीडक कण्टको न केवल पीडामेव, किन्तु सावधानताया प्रेरणामपि प्रयच्छति। परन्तु विचित्रस्वभावोय मानव पीडामेव केवलमुरीकरोति, प्रेरणा नहि।

कियदुत्तम स्याद्, यदि मनुष्यो विपरीतपरिस्थितिभ्योपि लाभादाने निपुण स्याद्। क्षेत्रेषु गतमपवित्र मलादिकमपि यद्युर्वरकरूपेण धान्यनिष्पत्तिसहायक भवेत्, ततो विपरीतपरिस्थितीनामुर्वरक कथमिव जीवनक्षेत्र शस्यसपन्न न विदध्यात् ? यदि तस्योपयोग सम्यग् विधिना कृत स्यात्, ततस्तदवश्य तथा विधातुमर्हति।

किमप्येतादृशा एव विचारास्तेषु वासरेषु मम मानसभूमावतरन्त

आसन्, येषु आचार्यश्रीतुलसीमहोदया अणुव्रतान्दोलनप्रचारार्थं जयपुरात् दिल्ली प्रति प्रस्थिता । स समय २००६-७ विक्रमाब्दीय आसीत् । तद्दिनेषु मुनि-समाजे एका हस्तलिखिता मासिक-पत्रिका 'जय-ज्योति' प्रकाशमाना आसीत् । तदर्थं सस्कृतभाषालेखाय प्रेरितेन मयात एव नवोद्गता विचारा कतिचनलघुगद्येषु शब्दबद्धीकृता । पाठकैस्ते सम्यक् समादृता अत पश्चादप्यनेकेष्वङ्केषु मया तादृशा एव विचारा गद्येषु लिखिता । एवमनायासादेव 'उत्तिष्ठत ! जागृत !!' इत्यभिधामापन्न एष सङ्ग्रह सम्पन्न ।

अस्य हिन्दी-भाषानुवाद· शार्दूलोपाह्वयेन मुनिना मोहनलालेन कृत । स च मम भावानामभिव्यक्तौ परिपूर्णतया साफल्यमाञ्चीदिति प्रसन्नतामभिव्यनज्मि ।

भारतस्य सुप्रसिद्धे 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' नाम्नि हिन्दीपत्रे सोनुवाद क्रमिकरूपेण प्राकाश्य प्राप्त । तत्पाठकेषु कतिचन जना मामजिज्ञपन् यत् ते घोर-निराशा-समये एतेन सम्प्रेरिता कर्त्तव्यपथप्रयाणसाहसमाधातुमलमभूवन्, निजोद्देश्ये साफल्य चापन् । अहमाशासे यदेतत् पुस्तक निराशादुतानन्यानपि जनान् तथैव आशाप्लुतान् विधास्यति, सत्कार्ये च तान् नियोक्ष्यति ।

२६ जनवरी, १९६०
दिल्ली

—मुनि बुद्धमल्ल

स्वकथ्य

जीवन के इस लम्बे पथ पर चलते समय हर पथिक को मार्ग मे आशा और निराशा, उत्साह और प्रमाद तथा उल्लास और विषाद के फूल और शूल दोनो ही मिलते हैं। फूल का रूप और गध जहा तन-मन को प्रीणित कर देता है, वहा शूल की चुभन और जलन उन्हे तडपाकर रख देती है।

फूल और शूल अपने-अपने स्थान पर अद्वितीय होते हुए भी परस्पर एकदम विरोधी है, फिर भी पथिक के लिए दोनो ही अनिवार्य है। पथिक, जिसकी मजिल दूर है, फूल से प्यार करता है और शूल से घृणा, क्योकि फूल उसके पथ को सुगम बनाते है और शूल दुर्गम। इसीलिए मजिल तक पहुचने के सकल्प से द्रुत तथा निरन्तर चलनेवाला पथिक फूलो को अपनी सिद्धि मे साधक मानता है और शूलो को बाधक।

हर पथिक चाहता है कि उसके पथ मे फूल ही फूल बिछे हो, शूल एक भी न हो, परन्तु प्रकृति ऐसा नही होने देती। अपनी चाह के विपरीत उसे फूलो के साथ-साथ शूलो का भी अनुभव करना ही होता है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नही है।

दोनो का अनुभव करने के बाद भी पथिक के मन मे एक चाह उभरती है कि वह अपनी स्मृति के कोश मे केवल फूलो की परिमल को ही स्थान दे और शूलो की चुभन को तत्काल विस्मृति के गर्त मे फेक दे। पर वह ऐसा नही कर पाता। वहुधा इससे विलकुल विपरीत फूलो की तृप्तिकारक सुगन्धि को वह भूल जाता है और शूलो की कटु यत्रणा उसके स्मृति-कोश मे से निकाले नही निकलती।

सम्भवत ऐसा भी हो सकता है कि फूल की कोमलता के प्रत्येक स्पर्श

पर पथिक अपना सहज अधिकार मानता है, अत उसकी हर प्राप्ति को याद रखकर उसकी गणना करने की भावना ही उसके मन में उदित नही होती। किन्तु शूल के हल्के-से-हल्के स्पर्श को भी वह स्वीकार करना नही चाहता अत उसके हर स्पर्श की गणना करता रहता है। सम्भवत इसी-लिए हर पथिक को यह अनुभव होता है कि लक्ष्य की ओर जानेवाले इस जीवन-पथ पर शूल ही अधिक हैं, फूल तो यहा कोई विरल ही दिखाई देता है।

चाहे जैसा भी हो, पर यह तो सुनिश्चित है कि अधिकाश व्यक्ति आशा, उत्साह और उल्लासमय जीवन के कुसुम-कोमल पथ पर चलने का ही स्वप्न देखते हैं, पर जब वहा निराशा, प्रमाद और विषाद के काटे चुभते हैं, तब सहसा ही उनका वह स्वप्न भग हो जाता है। परन्तु इससे क्या ? प्रकृति के राज्य में तो दोनो का ही समान अस्तित्व है। वह जितनी लगन से एक फूल को सवारती है, उतनी ही लगन से शूल को भी। फूल और शूल तथा शूल और फूल—इन दोनो ही वाक्यो को वह तुल्य-बल मानकर चलती है।

मनुष्य जितनी शक्ति निराशा, प्रमाद और विषाद को कोसने मे लगाता है, यदि मात्र उतनी ही शक्ति उनसे उत्पन्न अकर्मण्यता को मिटाने मे व्यय करने लगे, तो न कोई कार्य अधूरा रह सके और न कोई मजिल अप्राप्य। मार्ग के सभी काटे किसी भी पथिक के पैरो मे नही चुभ सकते। हजारो मे से कोई एक चुभता है। तब उस एक का इतना दु ख मानने से तो अच्छा है कि उससे पूर्व हजारो-हजारो काटो को निर्बाध लाघ सकने का उत्सव ही मनाया जाए। चुभनेवाला काटा केवल चुभन ही थोडे देता है ? वह सावधानी की प्रेरणा भी देता है। लेकिन मनुष्य चुभन तो ले लेता है प्रेरणा नही।

क्या ही अच्छा हो, यदि मनुष्य ऐसी विरोधी परिस्थिति से भी लाभ उठाए। कूडा-करकट खाद बनकर जब खेतो मे जाता है, तो धान्य-निष्पत्ति मे सहायक बन जाता है। तो फिर विरोधी परिस्थिति खाद

बनकर जीवन के खेत को लहलहाने मे सहायक क्यो नही बन सकती ? वह अवश्य बन सकती है, यदि उसका सही उपयोग करना सीख लिया जाए।

कुछ इसी प्रकार के विचार उन दिनो मेरे मन मे उठा करते थे। वह समय था वि० स० २००६-७ का, जबकि आचार्यश्री तुलसी अणुव्रत-आन्दोलन के प्रचारार्थ जयपुर से दिल्ली की यात्रा कर रहे थे। उन्ही दिनो हस्तलिखित मासिक पत्रिका 'जय ज्योति' प्रकाशित हुआ करती थी। उन्होंने उसके लिए सस्कृत भाषा के लेख की माग की तो मैंने अपने उन्ही नवोद्गत विचारो को कुछ गद्यो के रूप मे शब्दबद्ध कर दिया। वे पाठको द्वारा विशेष पसन्द किये गये, तो आगे के अनेक अको मे भी मैं वैसे ही गद्य लिखता रहा। इस प्रकार अनायास ही यह एक सग्रह हो गया, जिसका नाम 'उत्तिष्ठत ! जागृत ! ' है।

'उठो ! जागो !' नाम से इसका हिन्दी अनुवाद मुनि मोहनलाल जी 'शार्दूल' ने किया है, अनुवाद की भाषा मेरे भावो को अभिव्यक्त करने मे सफल हुई है, इसकी मुझे प्रसन्नता है।

भारत के सुप्रसिद्ध पत्र 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' मे यह 'उत्तिष्ठत ! जागृत !' नाम से क्रमश प्रकाशित हो चुका है। इसके पाठको मे से कुछ ने मुझे बतलाया कि निराशा के भयकर क्षणो मे इन गद्यो से उन्हे कर्तव्य-मार्ग पर बढने का साहस प्राप्त हुआ और वे अपने उद्देश्य मे सफल हुए। आशा करता हू, यह सग्रह अन्य सभी के लिए भी उसी प्रकार से उत्प्रेरक होगा।

२६ जनवरी, १९६०
दिल्ली

—मुनि बुद्धमल्ल

संयुक्त संस्करणस्य स्वकथ्यम्

'उत्तिष्ठत ! जागृत !' मूलत सस्कृत-भाषा-निबद्ध पुस्तक वेविद्यते, परन्तु सस्कृत-पाठकानामल्पीयस्त्वात् हिन्दी-भाषानुवाद-माध्यमेनैव तज्जनमन प्रवेश प्रापत् । सर्व-प्रथम 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' पत्रस्यानेकेष्वड्केषु तस्य क्रमश प्रकाशनमभूत् । ततश्च 'उठो ! जागो !' इति नाम्ना स्वतन्त्रपुस्तकरूपेण तस्य सस्करण-त्रय जनतया सम्यक् समादृतम् । साम्प्रतमेतत् सस्कृतस्य द्वितीय, अनुवादस्य च चतुर्थं सस्करण सयुक्तीकृतम् ।

गीर्वाणवाणी अपरिचयत्वादल्प परिचयत्वाद् वा दुरूहानुभूयते, परन्तु हिन्दी-पाठका यदि किञ्चिद् ध्यानपूर्वकमध्येष्यन्ते तर्हि स्वयमभ्युपैष्यन्ति यत् सा एतावती अपरिचिता स्वल्पपरिचिता वा नास्ति, यावती समध्यवसीयमाना विद्यते । एतत् सयुक्त सस्करण सुर-भारती प्रति जनाना दृष्टिकोणमुदार विधास्यतीति सुतरामाशासे ।

राजस्थान-विश्वविद्यालयेन स्नातकीय (बी० ए० ऑनर्स) पाठ्यक्रमे एतत् पुस्तक स्वीकृतम् । सानुवादत्वाद् विद्यार्थिनामध्ययनाध्वनि समापतन्तो व्यवाया सहजमपयास्यन्तीति विश्वसिमि ।

२५ सितम्बर, १९७४ —मुनि बुद्धमल्ल

वाराणसी

संयुक्त संस्करण का स्वकथ्य

'उत्तिष्ठत । जागृत ।' मूलत सस्कृत भाषा मे लिखी गई पुस्तक है, परन्तु सस्कृतज्ञ व्यक्ति अत्यन्त अल्प हैं, अत यह अपने हिन्दी अनुवाद के माध्यम से ही जनता तक पहुची है। सर्वप्रथम 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के अनेक अको मे क्रमश इसका प्रकाशन हुआ, उसके पश्चात् 'उठो । जागो ।' नाम से स्वतत्र पुस्तक-रूप मे इसके तीन सस्करण निकल चुके हैं, जो कि जनता द्वारा अच्छे समादृत हुए हैं। इस बार यह सस्कृत का द्वितीय और अनुवाद का चतुर्थ सस्करण सयुक्त कर दिया गया है।

सस्कृत भाषा अपरिचय या अल्पपरिचय के कारण दुरूह भले ही लगती हो, परन्तु हिन्दी-पाठक यदि उसे थोडा-सा ध्यान देकर पढेगे तो पायेंगे कि वह उतनी अपरिचित या अल्प-परिचित नही है, जितनी कि समझी जा रही है। यह सयुक्त संस्करण सस्कृत भाषा के प्रति जनता के दृष्टिकोण को उदार बनायेगा, मैं ऐसी आशा करता हू।

यह पुस्तक राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा स्नातकीय (बी० ए० ऑनर्स) पाठ्यक्रम मे स्वीकृत की गई है। हिन्दी भाषा का अनुवाद साथ मे होने के कारण विद्यार्थियो के अध्ययन-मार्ग मे आने वाली कठिनाइया सहज ही दूर हो जायेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

२५ सितम्बर, १९७४ —मुनि बुद्धमल्ल
वाराणसी

अनुवादक की ओर से

अन्तश्चेतना के विराट् वीचिमाली के जीवन्त और प्रेरणात्मक लहर का कलामय पद्धति से व्यक्तीकरण साहित्य है। अन्तरात्मा मे रही तेजस्विता और सतत कर्मण्यता इसमे प्रस्फुटित होती है। इसलिए यह लहर लहरी-परम्परा की सर्जक और उद्बोधक बनती है। अदृश्य की तीव्र अनुभूति तथा यथार्थ के क्षितिज से उठी हुई उसकी उच्च कल्पना जब भावना के प्रखर वेग मे शब्दबद्ध होकर बहती है तो एक नया ससार रच देती है, जो कि अमर और अज्ञात होता है। साहित्य का यह उत्स अनुन्नत और नीरस हृदय से नही फूट सकना। इसके पीछे गहरी सवेदनशीलता तथा अन्त करण की प्रबुद्ध भावना का दवाब होता है।

साहित्य हृदय का बोल होता है, इसीलिए वह सीधा हृदय को छूता है, सहलाता है और मर्माहत भी करता है। जीवन के दिशा-निर्धारण मे अप्रतिम सहयोगी तो वह बनता ही है। इसकी जो डाट-फटकार पडती है, वह बहुत असह्य होती है और अन्तस् को इतना उद्वेलित तथा प्रताडित करती है कि उसका एक-एक तार वेदना की प्रखरता से सिहर-सिहर उठता है। उसे शत-शत शिक्षाए एव लाख-लाख उपदेश जो नया मोड नही दे पाते, वह यह आकस्मिक ही दे डालती है। मन की कुण्ठा को तोडना और उसमे विशालता का अमृत भरना सबसे कठिन कार्य है। साहित्य इसे अनायास ही सम्पादित कर देता है। उठने, जागने और सतत चलने की शाश्वत प्रेरणा ही साहित्य की आत्मा है। इसी आत्मवत्ता के कारण वह चिर स्थायी और युग-युग श्लाघ्य बनता है।

साहित्य यथार्थ मे निर्मित किया नही जाता, वह होता है। सूर्योदय करता कौन है ? वह स्वय होता है। पुष्पो को कौन खिलाता है ? वे स्वय खिलते हैं। खिलना उनकी वाध्यता होती है। वे उसे रोक नही सकते। साहित्य भी एक विवशता है, उसे साहित्यकार रोक नही सकता। यह प्रस्फुटन फूल की पखुडियो के समान उत्तरोत्तर विकसित होता चला जाता है। साहित्य बहुत ही अध्यवसायी, सदाशय, उदार मस्तिष्क की देन है। कच्चा, कुत्सित और छोटा विटप कभी मीठे और स्वादिष्ट फल प्रदान नही कर सकता। लेखक के मानस का परम और जीवन्त तत्त्व जब उसकी कृति मे अभिव्यजित होता है, तब वह दूसरो के मानस को अपनी सजीवता से आप्लावित कर देता है।

प्रस्तुत पुस्तक साहित्य-परामर्शक मुनिश्री बुद्धमल्लजी की सस्कृत गद्यात्मक कृति 'उत्तिष्ठत ! जागृत !' का हिन्दी अनुवाद है। मैं अपना सौभाग्य मानता हू कि इसका अनुवाद करने का सुअवसर मुझे मिला। यह समग्र रचना जीवन-विकास के मौलिक सूत्रो से गुम्फित है। आलस्य, नैराश्य, हीन भावना और अविश्वास के छेदो के लिए यहा स्थान नही छोडा गया है।

मुनिश्री मे जो दृढ निश्चयता, अटूट आशामयता, गहरी स्पन्दन-शीलता और अप्रतिहत उदारता आदि की स्फूर्त भावनाए हैं, वे ही प्रस्तुत कृति मे वर्ण वस्त्रो को धारण कर उपस्थित हुई हैं।

परिस्थिति और वातावरणवाद को नगण्य नही मानते हुए भी वे उसे प्रमुखता नही देते। मूलत मानस-तत्त्व को ही ग्रहण करते है, जैसा कि उन्होने अपनी एक काव्य-पुस्तक 'मथन' मे कहा है—"मन का ही विश्वास मनुज को तार-मार सकता है।" वे निरी मनस्विता मे कम विश्वास करते हैं। उनकी दृष्टि मे—"है गति ही मान्य यहा, स्थिति पर विश्वास नही," यही जीवन का सही सूत्र है। मानस की जिस विकासशीलता पर उनकी आस्था जमी हुई है, वह कभी हिलती नही और गिरती नही।

आचार्यश्री तुलसी और मुनिश्री दुलीचन्दजी की सेवा मे क्रमश एक-एक वर्ष रहने के उपरान्त मुझे करीब पन्द्रह वर्ष से उनके ही सान्निध्य का लाभ प्राप्त है। इस सुदीर्घ समय में मैंने उनको अत्यन्त सामीप्य से देखा है। हर विषय मे वे अपने विश्वास को अटूट और अकम्पित रखते हैं। उनका धैर्य किसी भी विकट वेला मे डोलता नही। अनेक अवसर तो ऐसे उपस्थित हुए हैं, जहा व्यक्ति झल्ला-सा उठता है और अपनी जल्दबाजी मे काम बिगाड देता है। वहा मैंने उन्हे अपने धैर्य के बल पर उसे यथेष्ट सुधारते और नवीन दिशा देते देखा है। प्रतिकूलता मे वे शीघ्र रुष्ट या क्रुद्ध नही होते, सहिष्णु बनकर उसे अपने मधुर व्यवहार से परिवर्तित करने का चिन्तन रखते हैं।

मुनिश्री का व्यक्तित्व मुझे विभक्त नही दिखता, उसमे सन्तुलन है, वैषम्य और विपर्यय नही। उनकी वाणी और अन्तस् मे बहुत सीमा तक समन्वय है। जीवन के इन आधारभूत स्तम्भो का अवलोकन मैंने उनमे बहुधा किया है। मैं समझता हू, प्रस्तुत रचना मे मुनिश्री ने एक प्रकार से स्वय अपने ही सहज स्वभावो की अभिव्यजना की है।

'उत्तिष्ठत ! जागृत !' का यह अनुवाद तरूणो को उठाने और जगाने मे वृद्धो को अपने अनुभव-प्राप्त निष्कर्षों को परखने में तनिक भी प्रेरणादायी सिद्ध हुआ, तो मैं अपने इस प्रयत्न को सार्थक समझूगा।

५ अप्रैल, १९६०
सुधरी (राजस्थान)

—मुनि मोहनलाल 'शार्दूल'

अनुक्रम

•

एक वार फिर प्रहार करो	३	प्रयास मत छोडो	४५
वीज की तरह	५	चिन्ता किस बात की ?	४७
राख न वनो	७	निश्चल खडे रहो	४६
लौ की तरह जलो	६	भाग्य के स्वामी	५१
अपने पौरुष को सम्भालो	११	उदास मत होओ	५३
ठहरो मत	१३	रोओ मत	५५
सफलता का रहस्य	१५	अधीर मत बनो	५७
यदि उत्तर दे सको	१७	अवसर	५६
लक्ष्य अधिक दूर नही	१६	सफलता	६१
विजयी बनो	२१	विकास की लौ	६३
धन्य दिन	२३	इयत्ता नहीं	६५
शत्रु नही, मित्र	२५	ये क्षण	६७
जीवन से भी अधिक मूल्यवान्	२७	आज ही	६६
हमारी महत्ता	२६	ठडा मत होने दो	७१
विचार ही मूल है	३१	आत्मविश्वास	७३
मधुर व्यवहार	३३	योग्यता और कुशलता	७५
यथा-शक्ति	३५	सावधान !	७७
कम वोलो	३७	पहला कदम	७६
मन का दर्पण	३६	कौन हो सकता है ?	८१
महापुरुष वन सकते हो	४१	जागता हुआ यौवन	८३
सौभाग्य-निर्माण का अवसर	४३	सव कुछ पाओगे	८५

प्रगति के दो पैर	८७
वास्तविकता	८९
रोको मत	९१
तुम्हारी खोज मे	९३
नई महत्ता को जन्म दो	९५
सूक्ष्मता की ओर	९७
किसका सुधार ?	९९
एकमात्र मार्ग	१०१
पवित्रता को स्थान दो	१०३
अमर हो जाओगे	१०५
साहस कभी हारता नहीं	१०७
स्वय पर विजय	१०९
भिक्षुक	१११
निर्बल	११३
अपना मुख	११५
निकृष्ट प्रेमी	११७
प्रायश्चित्त	११९
कल्पित निर्वाण	१२१
उपयुक्त समय	१२३
यथार्थता	१२७
निसर्गज प्रकाश	१२९
शत्रु-विनाश	१३१
अपराजेय	१३३
किसका दोष ?	१३५
पूर्ण स्वतन्त्र	१३९
कैसा मित्र चाहिए ?	१४३
समता की प्राप्ति	१४७
बुद्धिमत्ता	१४९
कबूतरो !	१५१

उठो ! जागो !!

एकवारं पुनः प्रहरस्व

युवक ! निराशा त्वामधिचिकीर्षति इति महल्लज्जास्पदम्। यद्यपि शिरस्युत्सर्पन्ती घनघटा, अकाण्डसम्पातेन भापयमाना च विद्युत् त्वा निराशामाश्रयितु विवशीकरोति, तथापि त्व तरुणोऽसि, उत्साहस्तव शोणिते वेलाकुलो वर्त्तते, शौण्डीर्यं भुजयो वहिरेतुमुत्ताम्यति, विशाल च तव वक्ष शतखण्डीभूयापि नाशा जिहासति, तदा कथमिदानी निराशामाश्रयितु निर्णिनीषसि ?

सुभग ! उत्तिष्ठ, सत्वरमुत्तिष्ठ, मा हताशो भू । कार्यसम्पूर्त्ति : स्वल्पीयो बलिदान पुनरपेक्षते, इति सम्भाव्य अद्ययावत् यथा पराक्रान्त तथैव एकवार पुन पराक्रमस्व। सुनिश्चितमह वेद्मि, यत् निराशा रणक्षेत्र परिहाय सत्वरं पलायिष्यते। सहसैव तदानी त्व ज्ञास्यसि, यत् उपर्यापतन्ती घनघटा जीवनमुत्सृजति, सम्पतन्ती शम्पा पन्थान प्रकाशयति, प्रातिकूल्य च सर्वमानुकूल्ये परिणमति ।

असफलताया दृषदि यावत् काठिन्य दृश्यते, न तावत् सा तद् बिभर्त्ति। अनवरत प्रहरतस्ते सम्भवतोऽयमन्तिम प्रहार स्यात्। अतो युवन् ! मा विरसी , एकवार पुन प्रहरस्व।

एक बार फिर प्रहार करो

युवक ! निराशा तुम्हें दवाना चाहती है, यह महान् लज्जा की बात है। यद्यपि सिर पर उमडती हुई घटा और अचानक कडककर भयभीत करती हुई विजली तुम्हे निराशा की ओर ढकेलती है, फिर भी तुम तरुण हो, उत्साह तुम्हारे शोणित मे वेलाकुल है, वल तुम्हारी भुजाओ से वाहर आने को उतावला है और तुम्हारा यह विशाल वक्ष शतखड होकर भी आशा को नही छोडना चाहता, तो फिर ऐसी स्थिति मे तुम निराशा का आश्रय क्यो लेते हो ?

सुभग ! उठो, जल्दी उठो, हताश मत हो। कार्य की पूर्णता थोडे और वलिदान की अपेक्षा रखती है, यह जानकर तुम आज तक जैसे पराक्रम करते रहे, वैसे ही एक बार पुन पराक्रम करो। मैं सुनिश्चित जानता हू कि ऐसा करने से निराशा रणक्षेत्र को छोडकर शीघ्र ही भाग जायेगी। सहसा ही तव तुम जान पाओगे कि सिर पर मडराती हुई घटा जीवन-दान दे रही है, कडकती हुई बिजली पथ को आलोकित कर रही है और सारी प्रतिकूलताए अनुकूलता मे परिणत हो रही हैं।

असफलता की चट्टान मे जितनी कठोरता तुम्हे दिखाई दे रही है, वास्तव मे उतनी है नही। तुम इस पर निरन्तर प्रहार करते रहे हो। सम्भव है, इस वार का यह तुम्हारा प्रहार अन्तिम ही हो, अत युवक ! ठहरो मत, एक वार फिर प्रहार करो।

बीजमिव

आत्मन. शक्तीना बीजमिव अत्यन्तसावधानतया गोपनीयता च तावत् सुरक्षा विधेहि, यावत् तासा विकासाय अनुकूलसाधनानि नोपलब्धानि स्यु । लोकाना पापदृष्टित्त सुरक्षार्थं पूर्वं बीजमिवैव कठोरीभूय स्थातुमुचितम्, किन्तु अनुकूलावसरोपलब्धिसमये तत्कालमेव अङ्कुररूपे स्वात्मान परिवर्त्य अत्यन्तकोमलतया स्वास्तित्वपरिचय-दानेऽपि न स्खलितव्यम् ।

त्वयेति शिक्षणीय, यल्लघुतराङ्कुर आतपस्य चन्द्रिकायाश्च परस्पर सर्वथा भिन्नाया परिस्थितौ स्थित्वाऽपि कथमिवोभाभ्या लाभान्वितो भवति ? निशाया मलीमसेन तमसा, वासरे च समुज्ज्वलेन प्रकाशेन कथ स आत्मनोनुकूल पोषमवाप्नोति ?

अधस्तादूर्ध्वगामित्वस्य महत्त्वपूर्णाया क्रियाया रहस्यमपि बीजेनैव त्वयाध्येतव्यम् । युवक ! क्वाऽपि तवावस्थितिर्भवेत्, सर्वत्र त्वमात्मन पूर्णता गवेषय, प्रत्येकपरिस्थितितश्च सार सचिनु । ।

बीज की तरह

अपनी शक्तियो का वीज की तरह अत्यन्त सावधानी और गोपनीयता के साथ तव तक सरक्षण करते रहो, जव तक कि तुम्हे उनको विकसित करने के लिए अनुकूल साधन उपलब्ध न हो जाए। जगत् की पाप-दृष्टि से वचने के लिए प्रारम्भ मे तुम्हे वीज की तरह कठोर वनकर रहना होगा, पर अनुकूल अवसर आते ही स्वय को परिवर्तित करके अकुर के रूप मे अत्यन्त कोमलता के साथ अपने अस्तित्व का परिचय ससार को देने मे भी भूल नही करनी होगी।

तुम्हे सीखना होगा कि नन्हा-सा अकुर सूरज के आतप और चन्द्र की चन्द्रिका की परस्पर विभिन्न स्थितियो मे रहकर भी कैसे दोनो से लाभ उठाता है और रात के मलिन अधकार तथा दिन के उज्ज्वल प्रकाश, दोनो से ही वह किस तरह अपने लिए पोपण प्राप्त कर लेता है ?

पाताल से आकाश की ओर उठने की महत्त्वपूर्ण क्रिया का रहस्य तुम्हे वीज से सीखना होगा। युवक ! तुम कही भी रहो, वीज की तरह सदैव अपनी पूर्णता की खोज मे रहो और हर परिस्थिति मे से सार खीचते रहो।

भस्म मा भूः

युवक ! अङ्गार इव तेजस्वी प्रकाशमानो भूत्वा जीव । भस्म इव तेजोहीनो रूक्षश्च भूत्वा जीवनं न तव शोभायै भवेत् । आत्मनः समुज्ज्वलपक्षं प्रादुर्भावयितुं प्रयतस्व, क्षणमात्रमपि भस्मीभूतो मा भूः । कियच्चिरं जीवनं ते भविष्यति इत्यस्य नास्ति विशेषतः किमपि मूल्यं, किन्तु, यावज्जीवेस्तावन्न कदापि तव तेजस्विता मन्दा, पराजिता न भवेत्, इत्येव सर्वाधिकं मूल्यवत् ।

युवक ! स्वस्यान्तरिकतेजोभिस्त्वमात्मनः समस्तदोषान् क्षारीकुरु । स्वल्पकालमपि तान् मात्मनि स्थापय । दोषास्तव प्रकाशं मन्दयन्ति, वातावरणं च धूमाक्रान्तं जनयन्ति । तेषां सद्भावे तव प्रकाशो नैव निर्बाधं स्यातुमलम् । प्रकाश एव तव जीवनं, एतदर्थं स एव महत्तामर्हति । धूमोद्भाविकाः परिस्थितीः समूलमुन्मूलय । निर्धूम-वह्निवत् स्वकीयपवित्रज्योतिर्भिः विश्वमुद्भासय । युवक ! अङ्गारीभूय तिष्ठ, भस्म कदापि मा भूः ।

राख न बनो

युवक ! अगार की तरह तेजस्वी और प्रकाशवान् बनकर जियो। राख की तरह निस्तेज और रुक्ष बनकर जीना तुम्हे शोभा नही देता। अपने जीवन के उज्ज्वल पहलू को प्रकट होने दो, इसमे घबराने की कोई आवश्यकता नही। तुम्हारा जीवन-काल कितना लम्बा रहता है, इसका कोई विशेष मूल्य नही है। मूल्य तो इस बात का है कि तुम जितने काल जीवित रहो, उतने काल तक तुम्हारी तेजस्विता कभी मन्द न हो, पराजित न हो।

युवक ! तुम अपनी ही अन्तरग उष्मा से अपने समस्त दोषो को जला डालो, थोडी देर के लिए भी उन्हें अपने मे स्थान मत दो। दोप तुम्हारे प्रकाश को मद कर देते हैं। वातावरण को धूमिल कर देते हैं। उनके रहते हुए तुम्हारा प्रकाश निर्बाध नही रह सकता। प्रकाश ही तुम्हारा जीवन है, उसी को महत्त्व दो। धूम पैदा करने वाली परिस्थितियो को नष्ट कर दो। निर्धूम अग्नि की तरह अपनी पवित्र ज्योति से ससार को जगमगा दो। युवक ! अगार बनकर रहो, राख कभी न बनो।

दीपकलिकेव प्रज्वल

परितो निस्सीमक्षेत्र वगाह्य विस्तृते तमसि अतितन्वी दीप-कलिका निर्भयतापूर्वकमुत्तिष्ठति, आसन्नव्याप्त च ध्वान्त सलील गिलति ।

अगाधपारावारस्य दुरवगाह विस्तारमुपहसन्तीव लघुनौका अवारात् पाराभिमुख सर्पति । प्रतिक्षणमाक्रमणरता लहरीश्च विदारयन्ती निर्धारितलक्ष्यप्राप्तौ न कदापि व्याकुलतामनुभवति ।

विहायसोऽनन्तविस्तार कियदपि साक्रोश भीपयता , परन्तु न कदापि तेन विमान बिभेति। गम्भीरेण प्रचण्डेन च निनदेन आत्मनोऽस्तित्वमुद्घोषयत् तन्न केवल व्योम्न शून्यता भित्त्वा स्वगन्तव्यमभिधावति, किन्तु तदवाप्नोत्यपि ।

युवक ! दीपकलिकाया, नौकाया, विमानस्य च शौर्य्यसम्मुख तिमिरमकूपारोन्तरिक्ष चापि यदा पराजयते, तदा कुतस्त्व बिभेषि ? सम्प्रत्येव निर्भय सन् निजविजययात्रा प्रारभस्व, एते शैलवदसाधारणाकारवन्तोन्तराया, पर्जन्यवत् उत्सर्पन्तश्च सक्लेशा निश्चितमेव एकस्मिन् वासरे पराजिता भविष्यन्ति। अतो युवन् ! दीपकलिकेव प्रज्वल, नौरिव सचर, विमानमिव च गन्तव्यमभिधाव। तवाध्वा नान्धकारेण रोद्धु शक्ष्यते, नार्णवेन, न चान्तरिक्षेण ।

लौ की तरह जलो

चारो ओर अपार दूरी तक फैले हुए अधकार मे दीपक की छोटी-सी लौ निर्भयतापूर्वक उठती है और अपने आस-पास मे व्याप्त अन्धकार को लील जाती है ।

अथाह सागर के दुरवगाह विस्तार पर व्यग की तरह तैरती हुई लघु नौका इस पार से उस पार की ओर आगे बढती है। प्रतिक्षण अपने पर आक्रमण करती हुई लहरो को चीरती हुई वह अपने निर्णीत लक्ष्य तक पहुचने मे कभी नही घबराती।

आकाश का अनन्त विस्तार कितनी ही धमकिया देता रहे, किन्तु विमान उनसे कभी नही डरता। वह गम्भीर और प्रचण्ड निनाद से अपने अस्तित्व की घोषणा करता हुआ आकाश की शून्यता को भेदकर अपने गन्तव्य की ओर अग्रसर ही नही होता, अपितु उसे प्राप्त भी करता है।

युवक ! लौ, नौका और विमान के शौर्य के सम्मुख अन्धकार, सागर और आकाश भी पराजित हो जाते हैं तब तुम्हे किस बात का भय है ? तुम्हें अपनी विजय-यात्रा अभी से प्रारम्भ कर देनी है। पहाड के समान दिखाई देने वाली ये बाधाए और बादलो की तरह घिर-घिर आने वाले ये सकट निश्चित ही एक दिन पराजित हो जाएगे। युवक ! तुम लौ की तरह जलो, नौका की तरह चलो और विमान की तरह उडो। तुम्हारा मार्ग न अधकार रोक सकेगा, न समुद्र और न आकाश।

स्वपौरुषं सम्भालय

युवक ! उत्तिष्ठ, स्वपौरुष सम्भालय, मिहिकावत् मनोव्योम्नि परिव्याप्तामिमा निराशा च दूरमपसारय। एतत् सत्य, यज्जीवनस्याय पन्था कण्टकैराकीर्ण, परन्तु एतदपि सत्य, यत् त्व तानशेषान् कुसुमीकुर्वाण प्रगतिपरायणो भवितुमर्हसि। अन्तस्तल-गाम्भीर्यं विदार्य स्फुटीभवतोस्य करुणक्रन्दनस्य कटुता त्व मुक्तहास्यमाधुर्ये परिवर्तयितु सामर्थ्यं बिभर्षीति किमु नावगच्छसि ? यद्यवगच्छसि, तर्हि रोदनान्निवर्तस्व, विपत्तीना च प्रत्येकमाक्रमण स्मितमुख सन् प्रतिरुन्त्स्व, एता विपदस्त्वा परितापयितु नहि; किन्तु तव पराक्रम प्रगुणीकर्तुमेव समायान्ति।

यदि त्व स्वपौरुष श्यामिकाग्रस्त शस्त्रमिव कुण्ठित उपेक्षित च द्रष्टुकामो नासि, तर्हि विपद्भिर्योद्धु तन्नियोजय, मात्र स्वल्पमप्यातङ्कितो भव। तत् पराजित भविष्यतीति सन्देहो न कदाचिदपि विधेय, किंच, तत् पराजेतु जानात्येव नहि। त्व य पराजय मन्यसे, पौरुष ततोऽपि विजयफलावाप्तिमन्त्र जानाति। अपराजेयपौरुषस्य अखण्डस्वामित्वमाप्त्वापि यदि त्व निराशयाक्रम्यसे तत एतन् महल्लज्जास्पदम्। युवक ! उत्तिष्ठ, स्वपौरुष च सम्भालय।

अपने पौरुष को सम्भालो

युवक! उठो, अपने पौरुष को सम्भालो और कुहरे की तरह मन पर छायी हुई इस निराशा को दूर करो। यह सत्य है कि जीवन के इस बीहड पथ पर शूल ही शूल बिखरे हुए हैं, पर यह भी सत्य है कि तुम उन सबको फूल बनाते हुए आगे बढ सकते हो। क्या तुम नही जानते कि तुम्हारे अन्तस्तल की गहराइयो को चीरकर फूट पडने वाले इस करुण क्रन्दन को तुम मुक्त हास्य की मधुरता मे बदल देने की शक्ति रखते हो? यदि जानते हो, तो रोना बन्द कर दो और विपत्ति के हर आक्रमण का हसते हुए उत्तर दो। ये विपत्तिया तुम्हे रुलाने के लिए नही, किन्तु तुम्हारे पौरुष को चमकाने के लिए आती हैं।

यदि तुम अपने पौरुष को चमकाने को जग लगे शस्त्र की तरह भोठा और उपेक्षित देखना नही चाहते, तो उसे विपत्तियो से भिडा देने मे किंचित् भी मत घबराओ, उसे खुलकर युद्ध करने दो। उसके पराजित होने का सन्देह तुम्हे कभी नही होना चाहिए, क्योकि वह पराजित होना जानता ही नही। तुम जिसे पराजय समझते हो, पौरुष उसमे से भी विजय को फलित कर लेने का मन्त्र जानता है। अपराजेय पौरुष के अखण्ड स्वामित्व को पाकर भी यदि तुम निराशा से दबे रहो, तो यह अत्यन्त लज्जास्पद है। युवक! उठो और अपने पौरुष को सम्भालो।

मा स्था:

यदा अनुकूलो वायुर्वाति, राजपथस्योभयो पार्श्वयोर्विराजिता तरुराजिराकारयति साग्रह पल्लवपाणीङ्गितैरध्वनीनान्, खिन्न मन कामयते क्वचन शान्तिस्थले निरपाय क्रीडितुम्, नयनयुगल जिज्ञासते जलददलाना सम्मेलने प्रच्छन्नतयोपस्थितीभूय रहसि निर्धारित तत्कार्यक्रमम्, सहयोगिचरणयमलमुदास्ते स्वल्पमपि सहयोग दातुम्, युवक ! ईदृश्येवानेहसि परीक्षते प्रकृतिस्तव कार्यनिष्ठाम् ।

किञ्चित् स्थित्वा प्रस्थास्ये, इति विचारोऽपि त्वामनुत्तीर्णताया मार्ग नेष्यति । क्षण निध्याय, य अन्येषामपि तव सहगामिना त्वदविशेषैव स्थितिः । तेऽपि सम्प्रति विरन्तुमुशन्ति—इत्यनुमान नासत्यम्, किन्तु नाऽऽसीन लक्ष्यमासादयति--इति विदिततत्त्वा अविराम बद्धलक्ष्यास्ते प्रतिष्ठन्ते, ततस्त्वामेव कथमिव व्यथयेद् विरिरसा ?

युवक ! अनन्तक्लमभार सोढ्वापि अग्रे प्रतिष्ठस्व । क्षणमपि क्वचित् तावत् मा स्था, यावत सफलतादेवी तव चरणयमले सर्वस्वमानीय नोपस्थितीकुर्यात् ।

ठहरो मत

जब अनुकूल हवा चल रही हो, राजपथ के दोनो पार्श्वों पर शोभित तरु-पवित नव पल्लव रूप हाथो के सकेतो से पथिको को विश्रामार्थ आग्रह-पूर्वक बुला रही हो, थका हुआ मन कही शान्ति-स्थल मे निर्विघ्न क्रीडा करना चाह रहा हो, आखें बादलो के सम्मेलन मे प्रच्छन्न रूप से उपस्थित होकर एकान्त मे निर्धारित किया गया उनका कार्यक्रम जानना चाह रही हो और जब सदा सहयोग देने वाले पैर उत्तर दे चुके हो, युवक ! ऐसे क्षणो मे ही प्रकृति तुम्हारी कार्य-निष्ठा की परीक्षा लेती है ।

'कुछ ठहरकर चलूगा'—ऐसा विचार भी तुम्हें अनुत्तीर्णता की ओर ले जायेगा । तुम एक क्षण के लिए सोचो तो कि तुम्हारे साथ चलने वाले दूसरो की स्थिति भी तुम्हारे समान ही है । यह अनुमान असत्य नही है कि वे भी अब विश्राम करना चाहते हैं, किन्तु ठहरने वाले को लक्ष्य नही मिल सकता, इस तथ्य को वे जानते हैं, अत बिना विश्राम किए ही अपने लक्ष्य की ओर दृष्टि लगाये चले जा रहे हैं । तो फिर यह ठहरने की इच्छा तुम्हे ही इतना व्यथित क्यो कर रही है ? यदि तुम्हे अनन्त कष्टो का सामना करना पडे तो भी आगे बढो, क्षणभर भी कही तब तक मत ठहरो, जब तक कि सफलता देवी तुम्हारे चरण-युगल मे सर्वस्व लाकर उपस्थित न कर दे ।

सफलताया रहस्यम्

तरुण ! किमु सफलताया मन्दिरमारुरुक्षसि ? यदि आम्, तर्हि प्रथमसोपानात् प्रक्रमस्व। तथा च यावदागामिनि सोपाने चरणन्यासो नैव सुरक्षित स्यात्, मा तावत् पूर्वं न्यस्त चरणमाकुञ्च।

शक्तिमतिक्रम्य मा इयत् प्रबल धाव, यतो मध्ये एव विश्रान्तिरनिवार्यतयापेक्षणीया स्यात्। विश्रान्तेरर्थ –कार्यविरति, कार्यविरतेश्चार्थः–असाफल्यम्। अयमसामयिको विश्रम, प्रथम प्रीणात्यात्मान, किन्तु पश्चात् स एव मद्यपायिना मद्यमिव शक्तिक्षयविधायी स्यात्। अविश्रान्तो मन्थरो विश्रम्य विश्रम्य धावद्भ्य सर्वदैव सुदूरमध्वानमतिवाहयितुमर्हतीति सफलताया नितरामविस्मरणीय रहस्यम्।

सफलता का रहस्य

युवक ! क्या सफलता के मन्दिर पर चढना चाहते हो ? यदि हा, तो पहली सीढी से प्रारम्भ करो और जब तक अगली सीढी पर पैर अच्छी तरह न जम जाए, तब तक पहले रखा हुआ पैर मत उठाओ।

शक्ति को लाघकर इतने जोर मे मत दौडो कि जिससे तुम्हारे लिए बीच मे ही कही बैठकर विश्राम करना नितान्त आवश्यक हो जाए। विश्राम का अथ है—कार्य-विरति और कार्य-विरति का अर्थ है—असफलता। मद्यपायी को मद्य शक्तिदायक प्रतीत होता है, किन्तु वस्तुत वह उसकी शक्ति का ह्रास ही करता है, उसी तरह कार्य की उपेक्षा कर किया गया विश्राम एक बार मन को तृप्त करने वाला भले ही लगे, किन्तु अन्तत यह शक्ति का नाश ही करता है। ठहर-ठहरकर दौडने वालो की अपेक्षा धीरे, किन्तु निरन्तर चलने वाला व्यक्ति ही सदा लम्बा मार्ग तय करने मे समर्थ होता है। यह एक रहस्य है, जो तुम्हे सदा याद रखना चाहिए।

यदि प्रतिवक्तुं शक्येथाः

अभ्रैराच्छन्न व्योम यदा मलीमसवसनाच्छन्ननिशाचर इव भीषयितु कृतसङ्कल्प भायात्, पवमान क्वापि विजने कुम्भकप्राणायाम चिकीर्षुरिव नि स्पन्दीभूय विराजेत, धाराधर पश्यतोहर इव सरस्वत सलिलापहारे प्राप्तसाफल्यो निर्भय गर्जेत्, विद्युद् वाराङ्गनेव वपुप प्रदर्शन विधाय सहसैव जनाना चक्षूसि चपलीकुर्यात्, वृष्टेश्चाऽवार्यसम्भावनया निलयाद् वहिर्गमन दुस्साहसमेव मन्येत मन, एतादृशेवसरे यदि कश्चिदाप्तस्त्वा कमपि दुरारोह शैलशिखरमारोढु विनिर्दिशेत्, कथय युवन् ! किमु कथयिष्यसि तदानीम् ?

यदि एतस्य प्रतिवचः सम्प्रत्येव अविचलितचेतस्कतया दातु शक्येथा, ततोऽह भविष्यज्जीवनसम्वन्धि तव साफल्यमसाफल्य च इदानीमेव व्याख्यायाम् ।

मा विस्मार्षी, कार्यतत्परता, विरोधिपरिस्थितिविजिगीषा चेति गुणद्वयमेव तव युवत्वस्य प्रामाण्य चकास्तीति ।

यदि उत्तर दे सको

बादलो से आच्छन्न आकाश जब काले कपडे पहने निशाचर की तरह डराने के लिए कृत सकल्प हो, हवा कही एकान्त मे कुभक-प्राणायाम करने वाले की तरह अपना सारा स्पन्दन बद करके रुक गई हो, मेघ डाकू की तरह सागर के सलिल का अपहरण करने मे सफल होकर निर्भय गरजता हो, बिजली वेश्या की तरह अपने शरीर का प्रदर्शन करके हठात् ही मनुष्यो की आखो मे चपलता पैदा कर रही हो और जब वृष्टि की शत-प्रतिशत सभावना होने के कारण तुम्हारा मन घर से बाहर जाने को एक दुस्साहस मान रहा हो, ऐसे अवसर पर यदि कोई गुरुजन तुम्हे किसी दुरारोह पर्वत की चोटी पर चढने का आदेश दे, तो युवक ! बतलाओ, तब तुम क्या करोगे ?

यदि तुम इसका उत्तर इसी समय कुछ भी विचलित हुए बिना दे सको, तो मैं तुम्हारे आगामी जीवन मे आनेवाली सफलताओ और असफलताओ के बारे मे अभी बता दू ।

भूलो मत, तुम्हारे युवकत्व को प्रमाणित करने वाली दो ही बातें है—कार्य-तत्परता और विरोधी परिस्थितियो पर विजय पाने की इच्छा ।

लक्ष्यं नातिदूरम्

सुदूरमध्वानमुल्लङ्घ्यापि लक्ष्य यदि निकट नैव प्रतिभाति, तदा निसर्गतो हि निराशा त्वामधिचिकीर्षति; किन्तु युवक ! परीक्षासमये ऽस्मिन् प्रतिक्षण त्वया सावधानेन भाव्यम्। यल्लक्ष्य दविष्ठ प्रतीयते, गतिमता तन्निरन्तर मन्निकृष्ट भवति—इति विवेकस्त्वामग्रे प्रस्थानाय प्रेरयिष्यति, श्लथावपि चरणौ त्वरयिष्यति, भ्रान्तमपि मनो निग्रहीष्यति।

लक्ष्य कियदपि दूर भवेत्, तत् प्राप्यैव मया विश्रमणीयम्—इति सङ्गीर्य यदि गृहान्निष्क्रान्त, किं तदेदानीमेव विश्रान्तिमपेक्षसे ? सत्त्वशालिनो नहि कदाचिदपि प्रारब्धमसम्पूर्य मध्ये विरमन्ति। विरमणशीलाना कान्दिशीकाना सुनिर्णीतमपि कार्यं ध्वसते।

लक्ष्य प्राप्य यादृशमनिर्वचनीयमानन्द त्वमनुभविष्यसि, न कदापि तादृशमस्मिन् विश्रमणे। भ्रात ! सम्मुखीन लक्ष्यमेव एक वीक्षस्व, यत्र तव उन्नतजीवनस्य समग्रा अभिलाषास्त्वा प्रतिक्षण प्रतीक्षमाणा विराजन्ते। युवक ! एकवारं पुन समग्र साहसमेकीकृत्य प्रतिष्ठस्व। लक्ष्य नातिदूरम्।

लक्ष्य अधिक दूर नहीं

बहुत लम्बा मार्ग तय करने के बाद भी यदि मंजिल निकट नहीं दीख पड़ती, तब स्वभावतः ही निराशा तुम्हें दबोचना चाहती है। किन्तु युवक! इस परीक्षा के समय में तुम्हें प्रतिक्षण सावधान रहना है। जो लक्ष्य बहुत दूर प्रतीत होता है, वही चलने वालों के लिए निरन्तर निकट होता जाता है, यह विवेक तुम्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा देगा, थके हुए तुम्हारे पैरों में शीघ्रता भरेगा और तुम्हारे श्रान्त मन का निग्रह करेगा।

'मंजिल कितनी भी दूर क्यों न हो, मैं वहां पहुंचकर ही विश्राम करूंगा'—यह प्रतिज्ञा लेकर यदि घर से निकले हो, तो फिर अभी से विश्राम की बात क्यों सोचते हो? सत्त्वशाली मनुष्य प्रारम्भ किये हुए कार्य को पूरा किये बिना कभी विश्राम नहीं करते। जो मनुष्य कार्य-भार से घबराकर विश्राम करना चाहते हैं, उन डरपोकों का सुनिर्णीत कार्य भी नष्ट हो जाता है।

मंजिल को पा लेने पर जिस अनिर्वचनीय आनन्द का तुम अनुभव करोगे, वह इस विश्राम में कदापि नहीं पा सकते। तुम अपने सम्मुख केवल उस लक्ष्य को ही देखो, जहां तुम्हारे उन्नत जीवन की समग्र अभिलाषाएं प्रतिक्षण तुम्हारी प्रतीक्षा में डटी हैं। युवक! एक बार पुनः साहस बटोरकर प्रस्थान करो, लक्ष्य अधिक दूर नहीं है।

विजयस्व

परिस्थितय मनुष्य उत्तममधम वा कुर्वन्तीति प्राय सङ्गीर्यते, किन्तु मनुष्य स्वय परिस्थितीना घटयिता विघटयिता वास्तीति प्राय विस्मर्यते। बहुलतया जना स्थितीना प्रवाहे निपत्य तदनुकूलमेव प्रवहमाना धन्यमन्या भवन्ति, परन्तु एतादृशा कियन्तो जायन्ते, ये प्रवाहप्रभाव-मुन्मूल्य यादृशैस्तैर्भवितव्य तदनुकूलानामवस्थानामुत्पादे बद्धपरिकरा अहर्निश यतन्ते, सफलता च परिष्वजन्ते ?

कियत्योपि भयावहा परिस्थितय. सम्मुखमुपस्थिता भवेयु , परन्तु यावद् मनुष्यो न ता मनसा स्वीकरोति, तावन्न त स्वल्पमपि ता प्रभावयितुमर्हन्ति । यदि कश्चित् ताभिर्बिभीय सकृदपि मनोबलमवमनुते, न पुन स समुत्थानाय कृतसङ्कल्पोपि प्राय कृतकार्यो भवन् विलोक्यते।

यदि त्व स्वजीवने स्वस्यैव स्वामित्वमभिलषसि, तर्हि परिस्थितिभिर्मा भैषी , अपितु ता विजित्य स्वानुकूलतया स्थातु विवशीकुरु। कृतप्रयत्नोऽपि चेद् वैफल्यमुखेक्षणविवश स्यास्तथापि तासा दासता मा कथमप्युरीकार्षी । विरुद्धाभिस्ताभि सन्धीकरण तु मरणतोप्यधिक वेदनाविलिप्तम्, अतो प्राणपणेन ताभिर्युद्ध्वा विजयस्व।

विजयी बनो

परिस्थितियाँ मनुष्य को उत्तम और अधम बनाती हैं—यह प्राय कहा जाता है, किन्तु मनुष्य स्वय परिस्थितियों का घटक और विघटक है—यह प्राय भुला दिया जाता है। ऐसे व्यक्ति बहुत मिलेंगे, जो परिस्थितियों के प्रवाह में पड जाने पर उनके अनुकूल आचरण करने लगते हैं और अपने आपको धन्य मानते हैं, परन्तु ऐसे व्यक्ति कितने मिलेंगे, जो उस प्रवाह के प्रभाव को न मानते हुए, जैसा उन्हे बनना चाहिए, उसी के अनुकूल परिस्थिति का निर्माण करने में कटिबद्ध होकर दिन-रात प्रयत्न करते हैं और अन्तत सफलता प्राप्त करते हैं।

कितनी भी भीषण परिस्थितिया सामने उपस्थित हो, परन्तु जब तक मनुष्य उनको अपने मन मे स्वीकार नही कर लेता, तब तक वे उसे कुछ भी प्रभावित नही कर सकती। यदि कोई उनसे डरकर एक बार भी मनोबल की अवज्ञा कर देता है, तो फिर वह उत्थान के लिए बार-बार सकल्प करने पर भी प्राय कभी सफल होता देखा नही जाता।

यदि तुम अपने जीवन के स्वय ही स्वामी बनना चाहते हो, तो परिस्थितियो से डरो मत, किन्तु उनको जीतकर अपने अनुकूल होने के लिए विवश करो। ऐसा प्रयत्न करने पर भी यदि तुम्हे विफलता का मुख देखने को ही विवश होना पडे, तो भी उनकी दासता को किसी भी हालत मे स्वीकार मत करो।

विरोधी परिस्थितियो के साथ सन्धि करना तो मरने से भी अधिक घृणास्पद है, इसलिए प्राणपण से उनके साथ लडकर विजयी बनो।

धन्यो वासरः

जीवन नानाशक्तीना निधानमस्तीति विज्ञायापि मनुष्य कथमद्य नि शक्तोऽजनिष्ट ? एतदीदृशमेक रहस्य विद्यते, यन्नाधुनावधि पूर्णतया विश्लिष्टम् । सम्भवत सतीना शक्तीनामुपेक्षणमेव तासा विपरिणामे कारणमभवत् । आत्मन शक्तयो यावत् कार्ये नियुक्ता न स्युस्तावत् ता अपरीक्षिता एव तिष्ठन्ति, अतस्तासा सम्यग्रूपेण विश्रम्भोपि न भवति ।

एका जागरिता शक्तिर्द्वितीया सुप्तामपि ता सहसा जागरयतीति मुहुरनुभूत सुधीभि, अतो यदि त्वमात्मनि काञ्चिदेकामपि शक्तिमनुभवसि तर्हि ता कार्ये नियोजय, ततश्च ता अन्या अपि शक्तीर्जागरय, या अधुनावधि अज्ञाततया अगाधस्य चेतनासमुद्रस्यानन्तगहनताया क्वापि तिरोधाय निद्राणा सन्ति ।

जीवनमस्माकम्, अतस्तत्रस्था शक्तयोपि समस्ता अस्मदीया एव । तासा जागरणमेव चास्माक जागरणम् । किन्त्विद शक्तिस्वामित्वस्य तत्त्व भूमिविन्यस्त धनमिवाऽस्मरन्तो जना मनुष्यत्वकलङ्करूपा शक्तिविकलता हठादुरीकृत्यासते । स एव धन्यो वासर उदेष्यति जगतीतले, यस्मिन् मनुष्यो विस्मृता आत्मशक्तीस्तदाधार च जीवनमालक्षयिष्यति ।

धन्य दिन

जीवन नाना शक्तियों का निधान है, यह जानकर भी मनुष्य आज निःशक्त क्यों हो गया है? यह एक रहस्य है, जो अब तक पूर्ण रूप से खुल नहीं पाया है। सम्भवत अपनी विद्यमान शक्तियों की उपेक्षा ने ही उन्हें निःशक्ति रूप में परिणत कर दिया है। आत्मा की उन शक्तियों को जब तक काम में नहीं लिया जाता, तब तक वे अपरीक्षित ही रहती हैं, अत उन पर पूरा विश्वास भी तो नहीं हो पाता।

जागरित शक्ति दूसरी सुप्त शक्ति को भी सहसा जगा देती है, ऐसा विद्वज्जनों का अनेक बार किया हुआ अनुभव है, इसलिए यदि तुम अपने में किसी एक शक्ति का भी अनुभव करते हो, तो उसे कार्य में लगाकर अपनी उन अन्य शक्तियों को भी जागरित करो, जो कि अभी तक अज्ञात होने के कारण तुम्हारी इस चेतना के अगाध समुद्र की अनन्त गहराई में कहीं छिपकर सोयी हुई हैं।

जीवन हमारा है, इसलिए उसमें रहने वाली समस्त शक्तियां भी हमारी ही हैं। उन शक्तियों का जागरण ही हमारा जागरण है। किन्तु जिस प्रकार भूमि में गाड़े हुए धन को भूलकर मनुष्य अपने आपको दरिद्र मान बैठता है, ठीक उसी प्रकार शक्ति-स्वामित्व के इस तत्त्व को भूलकर मनुष्य आज शक्तिहीनता को अपने ऊपर लादे हुए है, जिसे मनुष्यत्व के लिए एक कलंक कहा जा सकता है। संसार में उसी दिन के उदय को धन्य माना जायेगा, जिस दिन मनुष्य अपनी विस्मृत शक्तियों को और उन शक्तियों के आधारभूत जीवन को पहचान पायेगा।

अवरोधस्तु मित्रीयति

यदि त्व गतिशीलस्तर्हि नहि कश्चिदप्यवरोधस्त्वामवरोत्स्यते । लक्ष्य स्थिरीकृत्य नितरा तदभिमुख प्रतिष्ठमानाना जागरितचेतस्कानामध्वनि समुपस्थिता अवरोधा न तानवरोद्धुम्, किन्तु तेषा गतौ वेगदानार्थमेव समायान्ति । तव जीवनस्य साफल्यमस्मिन्नेव निहितम्, यत् त्वमवरोधेभ्यो भीत्वा लक्ष्य न त्यजे, गति च न विस्मरे । एकस्या केवलाया तव जिगमिषाया तत् सामर्थ्यं चकास्ति, येनावरोधशतान्यपि स्वयमेव सन्ध्याभ्ररागनाश नश्येयु ।

अवरोधे समुपस्थिते सत्येव तत्प्रतिरोधाय मनुष्योन्तरङ्गदृष्टिर्भवति, स्वकीया शक्तीश्च तोलयति । इत्थमवरोध एव सुपुप्तशक्तीना जागरणाय, जागरितशक्तीना च प्रयोगाय, एक सदवसर समुपस्थापयति, अन्यथाऽय-मलसो मनुष्य उपलब्धमपि सामर्थ्यमप्रयोज्यमानत्वाद् विस्मरेत् ।

स्थाष्णून् विहाय चरिष्णूनेव विषयीकरोतीति प्रगतिपिशुनोयमवरोध कथमिव नाभिनन्द्य ? अलसता विहाय क्रियाशीलतामङ्गीकर्त्तु प्रेरयन्नसौ नहि शत्रूयति, किन्तु चिररात्राय मित्रीयतीति कथ न सोल्लास स्वीकार्य ? यदि त्व केनापि कृतमुपकारमवगन्तु शक्नोसि, तर्हि अद्यप्रभृति नि शङ्क निश्चिनु, यत्तव शक्ति-विकलता एव भयास्पदम्, न तु शक्त्युद्बोधक कश्चिदवरोध ।

शत्रु नहीं, मित्र

यदि तुम गतिशील हो, तो कोई भी अवरोध तुम्हें नहीं रोक सकेगा। लक्ष्य का निश्चय कर लेने के पश्चात् निरन्तर उसी ओर अग्रसर होने वाले और सावधान चेतनावाले व्यक्तियों के मार्ग में जो अवरोध आते हैं, वे गति को रोकने लिए नहीं, किन्तु उसमें अधिक वेग देने के लिए ही आते हैं। तुम्हारे जीवन की सफलता इसी बात पर निर्भर करती है कि तुम अवरोधों से घबराकर अपने लक्ष्य को न छोड़ो और गति को न भूलो। अकेली तुम्हारी जिगमिषा में वह सामर्थ्य है, जिससे टकराकर सैकड़ों अवरोध संध्या के रंग की तरह स्वयं विनष्ट हो जाते हैं।

रुकावट आने पर ही मनुष्य उसके प्रतिरोध के लिए अपने अन्तरंग को टटोलता है और अपनी शक्तियों को जागरित करने के लिए और जागरित शक्तियों का प्रयोग करने के लिए, एक अच्छा अवसर उपस्थित कर देता है। यदि ऐसा नहीं होता तो मनुष्य अपने प्राप्त सामर्थ्य को कहीं प्रयुक्त नहीं कर सकने के कारण कभी का भूल जाता।

अवरोध गति-शून्य व्यक्तियों को नहीं सताता। वह तो गतिशील के ही मार्ग में आता है, अतः वह प्रगति का ही सूचक बनता है तो फिर क्यों नहीं उसका अभिनन्दन किया जाए? आलस्य से हटाकर क्रियाशीलता की ओर प्रेरित करनेवाला अवरोध चिरकाल से हमारे साथ शत्रुता का नहीं, किन्तु मित्रता का व्यवहार करता आ रहा है—क्यों न इस तथ्य को सहर्ष स्वीकार कर लिया जाए? यदि तुम किसी के द्वारा किये गये उपकार को समझ सकते हो तो आज से दृढ़ संकल्प से निश्चय कर लो कि तुम्हारी यह शक्ति-विकलता ही [illegible] है, न कि शक्ति को उद्बुद्ध करने वाला यह अवरोध।

जीवनतोप्यधिकं मूल्यवत्

जीवनमेव सर्वाधिक मूल्यवत्—इत्यभिमत न मया कदाप्यभिनन्द्यते। यद्यपि जीवित सर्वेषा प्रियम्, देहिनो निसर्गतो हि जीवितुमीहन्ते, तथाप्यनेकेवसरा एतादृशा उपस्थिता भवन्ति, यत्र चेतनावन्तो हसन्त-सन्त स्वजीवनमुत्सृजन्ति । तेषामेष उत्सर्ग किमु प्रेयसोपि जीवनत कस्याप्यन्यस्य तत्त्वस्य महार्घता नहि सूचयति ?

एतस्य मम कथनस्य ते सर्वेपि साक्षिण सन्ति, ये सिद्धान्ताय, आत्मसम्मानाय, सेवायै च जीवनमहमहमिकयाहुतीकृत्य मृत्युमालिलिङ्गु। अनेके तेप्यस्य सत्यापयितारः, ये जिजीविषया सिद्धान्तादिकमवाजीगणन् । कथ च, बलिदानसमये जिजीविषव साम्प्रत च मुमूर्षवस्ते श्वसन्तोपि मृता एवानुभूयन्ते लोकै ।

जीवन यावन् मूल्यवत्, लक्ष्य-सिद्ध्यै मरण ततोप्यधिक मूल्यवच्च-कास्ति । निर्लक्ष्ययोर्जीवनमरणयोर्महत्त्व मानवसङ्ख्याया वृद्धिहानी अतिरिच्य किमप्यन्यत् सम्भवीति न प्रातीतिकम् ।

सम्यग्लक्ष्य निर्णीय, तदर्थमेव यैरत्र जीवितम्, तदर्थमेव च मृतम्, त एव समयसीमानमुल्लङ्घ्य अद्यापि वस्तुवृत्त्या जीवन्तो विराजन्ते ।

जीवन से भी अधिक मूल्यवान्

जीवन ही सबसे अधिक मूल्यवान् है, मैं इस विचार का कभी अभिनन्दन नहीं करता। यद्यपि जीवन सबको प्रिय है, प्राणी स्वभाव से ही जीना चाहते हैं, फिर भी ऐसे अनेक अवसर उपस्थित होते हैं, जिनमें वे हंसते हुए अपने जीवन का उत्सर्ग कर देते हैं। उनका वह उत्सर्ग क्या यह सूचित नहीं करता कि कोई ऐसा तत्त्व भी है, जो जीवन से अधिक मूल्यवान् है ? मेरे इस कथन के वे सब साक्षी हैं, जिन्होंने सिद्धांत, आत्म-सम्मान और सेवा के लिए सबसे आगे आकर अपने जीवन की आहुति दी और मृत्यु का आलिंगन कर लिया। वे अनेक व्यक्ति भी मेरी इस बात को सत्य सिद्ध करते हैं, जो सिद्धान्त आदि की अवगणना करके जीना चाहते हैं, क्योंकि बलिदान के समय में जीना चाहने वाले और अब मरना चाहने वाले वे व्यक्ति यद्यपि सांस ले रहे हैं, किन्तु जनता उन्हें मृतकों की संख्या में ही गिन रही है।

जीवन जितना मूल्यवान होता है, लक्ष्य सिद्धि के लिए मरना उससे भी अधिक मूल्यवान होता है। लक्ष्यहीन जीवन और मरण का महत्त्व मात्र संख्या की वृद्धि और हानि के अतिरिक्त कुछ और भी हो सकता है, यह विश्वास भी नहीं किया जा सकता।

महान लक्ष्य का निश्चय कर, उसके लिए ही जो जिये हैं और उसके लिए ही जो मरे हैं, वे ही समय की सीमा को लांघकर आज भी यथार्थ में जीवित हैं।

अस्माकं गरीयस्त्वम्

कार्यं स्वय गरीयो लघीयो वा न भवति, किन्तु धर्तु सान्निध्य-मासाद्यैव गरीयस्त्व लघीयस्त्व वा तस्मिन् समुत्पद्यते। विधातुरविहस्ताभ्या हस्ताभ्या सश्रममुद्भवल्लघिष्ठमपि कार्यं महीयस्त्वमासादयति, यदा च गरिष्ठमपि कार्यं कुशलेतराभ्या कराभ्या लघीयस्त्वम्।

लघिष्ठ कार्यमिदम्—इत्यवधार्य ये कार्यमुपेक्षन्ते, ते नहि कदाचित् कस्मिश्चिदपि कार्य-सम्पादने कौशलमवाप्तु शक्यन्ते। किन्तु नाकर्मण्येन स्थेयम्-इत्यवधार्य ये प्राप्तावसर लघिष्ठमपि कार्यमुदग्रचिकीर्षया सोत्साहमारभन्ते, कृतकार्यास्ते आत्मन कर्तृत्वशक्तिमुन्नयन्ति, क्रमश गुरुतम-कार्यसम्पादनेष्यस्खलित सामर्थ्यमुद्भावयन्ति।

एकत्र लब्ध साफल्य कर्तुरुत्साहमुन्नीय अन्यत्रापि साफल्यमेव प्रेरयति, असाफल्य च तथैवोत्साह विघटयति, असाफल्यमेव च जनयति। अत समुपस्थित कार्यं सम्यक्तया सम्पाद्य कर्त्ता यद् गौरवमर्जयति, तत्र कार्यस्यापि महान् योगो भवति।

कार्यस्य गुरुत्वलघुत्वयोर्विषये तु वयमेव कारणम्, किन्तु अस्माक गुरुत्व लघुत्व वा नहि केनापि गरीयसा लघीयसा वा कार्येणाभिव्यङ्ग्यम्। तत् तु केवलमस्माक शोभनेनाशोभनेन वा कार्य-पूर्त्या प्रकारेणैवाभि-व्यज्यते।

हमारी महत्ता

कार्य स्वयं महान् या लघु नहीं होता, किन्तु कर्ता का सान्निध्य पाकर ही उसमें महत्ता या लघुता उत्पन्न होती है। कर्ता के कुशल हाथों के श्रम से सम्पन्न होने वाला छोटा कार्य भी महान् हो जाता है, जबकि अकुशल हाथों से किया हुआ कार्य भी तुच्छ हो जाता है।

'यह तो छोटा काम है'—ऐसी धारणा से जो व्यक्ति कार्य की उपेक्षा करते हैं, वे किसी भी कार्य के सम्पादन में सुघड़ता नहीं पा सकते। अनादर नहीं करना चाहिए, इस धारणा से प्रेरित होकर यथासमय छोटे-से छोटे काम का भी उत्कट कर्तृत्व-बुद्धि और साहस के साथ प्रारम्भ करते हैं, वे उसमें सफल होकर अपनी कर्तृत्व-शक्ति को विकसित कर लेते हैं और फिर क्रमशः गुरुतम कार्यों के भार को सम्भालने का भी ऐसा सामर्थ्य पैदा कर लेते हैं कि उनमें स्खलना के लिए कोई अवकाश ही नहीं रह जाता।

एक स्थान पर पाई गई सफलता कर्ता के उत्साह को बढ़ाती है और साथ ही आगे सफलताएं भी देती है, ठीक इसी तरह असफलता उत्साह को घटाती है और आगे के लिए भी असफलता ही देती है। अतः सामने आए हुए कार्य का मनोयोगपूर्वक पूरा करके कर्ता जिस गौरव को प्राप्त करता है, उससे कार्य का भी बहुत बड़ा रूप होता है।

कार्य की गुरुता और लघुता के विषय में तो हम ही कारण हैं, किन्तु हमारी गुरुता या लघुता किसी बड़े या छोटे कार्य के द्वारा अभिव्यक्त नहीं होती, वह तो प्रत्येक कार्य सम्पन्न करने के हमारे अच्छे या बुरे प्रकार से ही अभिव्यक्त होती है।

विचार एव मूलम्

मनुष्योऽहर्निश यत् किञ्चिद् विचारयति तच्चेदविकलरूपेण प्रतिपादयितुमपि समुद्यतेत, ततस्तस्य विपये नि सशय विज्ञातु शक्यते यत् स भविष्यति कीदृशो भविष्यतीति।

अद्याऽसौ पुमान् यादृशो विद्यते, तादृश पूर्वविचाराणा प्रभावेणैव समजनिष्ट, आगामिनि च काले तादृशमेव स्वात्मान निर्मास्यति, यादृशमद्य विचारयतीति सुनिश्चितम् । अतो हि विचार-वैशद्य-विपये सदा सावधानता अपेक्ष्यते।

ये विचारा असकृच्चेतसि प्रवुध्यन्ते तेपामनुसारेणैव कालपरिपाकेन आचरणान्यपि जायन्ते। आचरणाना विचारानुसारि परिणमनमिदमियच्छनै शनैर्भवति, यन्नहि सामान्यैरववोद्धुमपि सहसा शक्यम्।

दुस्साध्यमपि कार्यं मुहुर्विचारक्षेत्रे प्रविष्ट सत् सुसाध्य भवति, सुसाध्य च तत् विचार-क्षेत्र-वहिर्भूत सत् दुस्साध्यतामभ्येति । अत सुनिर्णीतमेतद्, विचार एव कार्यस्य मूलम्। विचारानुसारि क्रियमाण कार्यं सुसाध्यत्वात् सफल भवति, कर्त्तुर्मनसि च तमुत्साह जनयति य करिष्यमाणेषु कार्येषु गतिमुद्भावयति।

मुहृद्वरा ! यदि उत्तमा वुभूषन्ति तर्हि उत्तमानि कार्याणि कुर्वन्तु। यद्युत्तमानि कार्याणि चिकीर्षन्ति तर्हि उत्तमान् विचारान् हृदये सस्थापयन्तु। एष एव स समीचीन पन्था यो मनुष्यतामुपतिष्ठते।

व्यवहार-माधुर्यम्

व्यवहार-माधुर्यं सर्वेषा प्रियम्, किन्तु यावतोत्साहेन सिद्धान्ततो वयमेतज्जानीम., किमु तच्छताशतोपि जीवने समाचरितुमुत्कचेतस्कतामादधीमहि ?

अजानता केनापि यद्यस्माक किञ्चिदपराद्धम्, किमु वयमार्जवेन तद् विस्मृतीकृत्य पूर्वानुसारिणा स्निग्धव्यवहारेण प्रवर्त्तमाना लेशतोपि मनोमालिन्यमनादधाना सर्वसहता परिष्वजेमहि ?

जानतापि वा केनचन प्रतिद्वन्द्विताचणेन स्वार्थप्रवणेन जनेन यद्यस्मद्रुचिविपरीत किमप्याचरितम्, किमु तदानी वय वैरनिर्यातन-सामर्थ्यमावहन्तोपि तत् क्षान्त्वा अनुद्विजमानमनसस्तद् विस्मर्तुं चेष्टेमहि ?

विरोधिना वा केनापि यदि निष्कारणमेवास्माक कार्येषु कदाचिदाक्षिप्तम्, किमु तदानी वयमुद्वेलायित-मनोवारपारं सीमोल्लङ्घन-व्यापाराद् वारयितुमल्पीयोपि प्रयतेमहि ?

यद्येतेषा प्रश्नानामुत्तरमस्माक पार्श्वे नकारात्मकमेव केवल चकास्ति, ततो वचोमात्रस्वीकृतेन अनापन्नव्यवहारदशेन उदारेणाप्यनेन सिद्धान्तेन न वय जीवनयात्रायामल्पीयसीमपि सफलतामुपगूहाम ।

प्रत्येकस्मिन् जीवनव्यापारे निसर्गतया माधुर्यमभिव्याप्त यस्मिन् वासरे भविष्यति, स एवास्माभिर्नितरामभिनन्द्यो वासरो भविष्यति ।

यथा-शक्ति

कार्य-शक्ति यद्यक्षता रक्षितुमीहसे तर्हि तावतैव वेगेन कार्यं कुरु यावता क्लमानुभूतिरुग्रता न यायात् । तादृगेव कार्यं पूर्वमारभस्व यस्य पूर्ति निःसंशय कर्तुं शक्येथा ।

यथाशक्ति कृत कार्यं सत्वर सफल सत् कर्तुरुत्साहमुल्लासयति। शक्तिमुपेक्ष्य कृत च तत् असफल सत् उत्साहमुत्सादयति । इत्थमेव च उत्साहवत कार्याणि यत्र आत्मन कर्तृत्वशक्तौ विश्वासमाविर्भावयन्ति तत्र निरुत्साहवतस्तानि शक्ति-सीम्नि स्थितान्यपि निराशामेव केवलमुद्भावयन्ति ।

सामर्थ्यमवगणय्य कृत एकस्यापि दिनस्य कार्यं भोजनमजीर्णमिव कार्यशक्तौ दूषणमुत्पादयतीति असौ लोभोपि भाविलाभस्थैर्याय नितरा हेय एव ।

यथा-शक्ति

कार्य-शक्ति यद्यक्षता रक्षितुमीहसे तर्हि तावतैव वेगेन कार्यं कुरु यावता क्लमानुभूतिरुग्रता न यायात् । तादृगेव कार्यं पूर्वमारभस्व यस्य पूर्ति नि सशय कर्तुं शक्येथा ।

यथाशक्ति कृत कार्यं सत्वर सफल सत् कर्तुरुत्साहमुल्लासयति । शक्तिमुपेक्ष्य कृत च तत् असफल सत् उत्साहमुत्सादयति । इत्थमेव च उत्साहवत कार्याणि यत्र आत्मन कर्तृत्वशक्तौ विश्वासमाविर्भावयन्ति तत्र निरुत्साहवतस्तानि शक्ति-सीम्नि स्थितान्यपि निराशामेव केवलमुद्भावयन्ति ।

सामर्थ्यमवगणय्य कृत एकस्यापि दिनस्य कार्यं भोजनमजीर्णमिव कार्यशक्तौ दूषणमुत्पादयतीति असौ लोभोपि भाविलाभस्थैर्याय नितरा हेय एव ।

यथा-शक्ति

कार्य-शक्ति को यदि अक्षुण्ण रखना चाहते हो, तो उतने ही वेग से कार्य करो, जितने से कि थकावट की अनुभूति उग्र न होने पाए तथा पहले-पहल वैसा ही कार्य प्रारम्भ करो, जिसको पूरा कर सकने मे तुम्हे कोई सन्देह नही हो।

यथा-शक्ति किया हुआ कार्य शीघ्र सफल होता है और कर्ता के उत्साह को वढाता है, जवकि शक्ति से वढकर किया गया कार्य असफल होकर उत्साह को मद कर देता है। इसी प्रकार उत्साही व्यक्ति के कार्य जहा कर्तव्य-शक्ति मे विश्वास पैदा करते हैं, वहा निरुत्साही व्यक्ति के कार्य उसकी कर्तव्य-शक्ति की सीमा मे होने पर भी केवल निराशा ही पैदा करते हैं।

जिस प्रकार मात्रा से अधिक भोजन अजीर्ण रोग का उत्पादक होता है, उसी प्रकार शक्ति से वढकर किया गया कार्य अपनी कार्य-क्षमता मे दोष उत्पन्न कर देता है, अत भावी लाभ की सुरक्षा के लिए वर्तमान में एक साथ अधिक कर लेने का यह लोभ अवश्य ही छोड देना चाहिए।

अल्पं जल्प

युवक ! त्वं मन्यसे यत् तव पार्श्वे कथनाय बहु विद्यते, अत एव त्वं किञ्चित् चिकथयिषुरप्यसि। जल्पनपक्षे तवैते सर्वोत्तमतर्काः सन्ति यत् आत्मनो महत्तायै नहि, किन्तु केवलं जनहिताय वक्तव्यम्, तथा यत् किञ्चिज्जनकल्याणकारि तत्त्वं प्राप्तं तन्निर्लिप्तभावेन कर्तव्यमिति मत्वा सर्वेषां सम्मुखमुपस्थापनीयमित्यादि । परन्त्वहं त्वामिति पिप्रच्छिषामि यत् किमु त्वं किमपि शुश्रूषस्यपि ? किं तवाकर्णनाय नात्र भूयिष्ठमवशिष्टं विद्यते ? यद्यस्ति, तर्हि पूर्वं तत् आकर्णय, कथनाय मोघं मैयत् त्वरस्व।

प्रकृतितो हि तव सन्निधौ श्रवणोपकरणानि जल्पनोपकरणेभ्यः अधिकानि विद्यन्ते, अतोऽल्पं जल्प, अधिकं शृणु। अनेनैव विधिना त्वं लोककल्याणं कर्तुमर्हसीति मा विस्मार्षीः। युवक ! किमु त्वमिति नैव वेत्सि, यदद्य जनानां पार्श्वे केवलं कथनार्थमेव विद्यते, श्रवणार्थं नहि। संसारेद्य वक्तृणां सुलभतास्ति, किन्तु श्रोतृणां दुर्लभता। त्वं लोकस्येममभावं पूरयितुं सहयोगी भव।

कम बोलो

युवक ! तुम समझते हो कि तुम्हारे पास कहने के लिए वहुत कुछ है, इसीलिए तुम कुछ कहना चाहते हो। बोलने के पक्ष मे तुम्हारे सर्वोत्तम तर्क ये हैं कि अपने व्यक्तिगत महत्त्व के लिए नही, किन्तु एकमात्र जन-हित के दृष्टिकोण से बोला जाए, तथा जो कुछ प्राप्त है, उसे निर्लिप्त भाव से वितरित कर देना अपना कर्तव्य समझा जाए, आदि-आदि। परन्तु मैं तुम्हे पूछना चाहता हू, क्या तुम कुछ सुनना भी चाहते हो? क्या तुम्हारे सुनने के लिए यहा वहुत कुछ अवशिष्ट नही है? यदि है, तो पहले उसे सुन लो। कहने के लिए अनावश्यक ही इतने आतुर मत बनो।

स्वभावत ही तुम्हारे पास बोलने के उपकरणो से सुनने के उपकरण अधिक हैं, अत कम बोलो, अधिक सुनो। यह मत भूलो कि तुम केवल इसी प्रकार से लोक-कल्याण कर सकते हो।

युवक ! क्या तुम नही जानते कि आज लोगो के पास केवल कहने को ही रह गया है, सुनने को नही। आज ससार मे वक्ता सुलभ हैं, जवकि श्रोता दुर्लभ। तुम ससार के इस अभाव की पूर्ति मे अपना सहयोग दो।

मनो-मुकुरः

मनुष्यस्य इद मन कश्चनैक एतादृशो मुकुरो विद्यते, यस्मिन् परेषा विशेषता आत्मनश्च न्यूनता अतीव लघीयस्त्वेन प्रतिविम्बिता भवति, तथा च परेषा न्यूनता आत्मनश्च विशेषता अतीव विशालत्वेन। एतदेव कारण चकास्ति, यत् अधिकशो मनुष्या आत्मन परेषा वा केषाचिदपि सत्य मूल्यमङ्कयितु प्रायो नैव क्षमन्ते। अस्मिन् विषये तेषा स्वकीय स्वान्तमेव तान् प्रतारयति।

युवक ! यदि त्वमेना मनस स्थिति सम्यगवगम्य आत्मनो विचारेषु अस्या सन्तुलन साधयितु क्षमसे, तर्हि अवश्यमेव पूर्वापेक्षयाधिका सत्यस्य सन्निधानतामाप्स्यसि। तस्मिन् समये तव कथनेपि तत् तेज -स्फुरिष्यति, यज्जनमन प रवर्त्तयितु प्रत्यल भविष्यति। तव तूष्णीभावोपि लोकान् तादृश प्रेरयिष्यति, यादृश परेषा प्रवलानि व्याख्यानशतान्यपि न प्रेरयितुमलम्।

मन का दर्पण

मनुष्य का मन एक ऐसा दर्पण है, जिसमे दूसरो की विशेपता और अपनी न्यूनता का प्रतिविम्व वहुत ही छोटा पडता है, जवकि दूसरो की न्यूनता और अपनी विशेषता का प्रतिविम्व वहुत ही वडा। यही कारण है कि अधिकाश मनुष्य स्वय अपना तथा किसी दूसरे का सही मूल्याकन प्राय नही कर पाते। इस विषय मे उन्हे उनका अपना ही मन धोखा दे जाता है।

युवक ! यदि तुम मन की इस स्थिति को अच्छी तरह से समझकर अपने विचारो मे इसका सन्तुलन साध सको, तो अवश्य ही तुम अपने आपको पहले से अधिक सत्य के निकट पाओगे। उस समय तुम्हारे कथन मे भी वह तेज होगा, जो जन-मन को परिवर्तित कर सकेगा और तुम्हारा मौन भी लोगो को वह प्रेरणा देगा, जो दूसरो के सैकडो जोशीले व्याख्यान भी नही दे पाते।

महापुरुषो भवितुं प्रभवेः

कदाचित् तव हृदय इयतोत्साहेन भरित भवति, यत क्रियमाण प्रत्येक कार्य लघु प्रतीयेत, घटिकाभि सम्पूरणीयानि च कार्याणि क्षणैरेव सम्पूरितानि स्यु । कदाचित् तदियन्निरुत्साहमपि सम्भवेद्, यतस्त्व स्वात्मान प्रत्येक-कार्यायोग्यमनुभवितु प्रारभेथा , क्षणै समापनीयानि च कार्याणि घटिकाभिरपि समाप्तुमसामर्थ्यमनुभवे ।

कदाचित् तवान्त करणे इयती प्रसन्नता परिव्याप्ता स्यात् यत् तामवेरयितुमपि त्व न शक्नुया , तदानीमेतज्जगत् त्रिदिवादप्यधिक सम्पन्न सुखदायक च त्वयानुभूत स्यात्, परन्तु यदा कदाचित् तदप्रसन्नतयाक्रान्त स्यात्, तदा नरकोप्यत्रैव दृष्टिपथे समागत स्यात्, सम्भवतस्तदानीमेतस्माज्जगतो मुक्त्यर्थमात्मघातोऽपि त्वया उपयुक्तो मत स्यात् ।

युवक ! उत्साहनिरुत्साहयो प्रसन्नताऽप्रसन्नतयोश्च युग्ममिवैव अन्यान्यपि बहूनि परस्परविरुद्धाना भावनाना युग्मानि सन्ति, यानि तव जीवनमान्दोलयन्ति । यदि तेषु प्रत्येकस्य युग्मस्य शुभाश विवर्द्धये , अशुभाश च दमयेस्तर्हि त्वमेकस्मिन् वासरेऽवश्यमेव निजयुगस्य महापुरुषो भवितु प्रभवे , नाऽत्र काचिदारेकरेखाऽपि चकास्ति ।

महापुरुष बन सकते हो

कभी-कभी तुम्हारे मन मे इतना उत्साह भर आता होगा, कि हर कार्य छोटा दिखाई देने लगे और घटो मे होने वाले कार्य क्षणो मे सम्पन्न कर लिए जाए, परन्तु कभी-कभी तुम इतने निरुत्साह भी हो जाते होओगे कि अपने आपको प्रत्येक कार्य के लिए अयोग्य समझने लगो और क्षणो मे किये जानेवाले कार्य को घटो मे भी समाप्त कर सकने मे अपने को असमर्थ पाओ।

कभी-कभी तुम्हारे मन मे इतनी प्रसन्नता भर आती होगी कि तुम उसे अपने मन मे सभाल भी न पाओ, तव तुम्हे यह ससार स्वर्ग से भी अधिक सम्पन्न और सुखदायक लगता होगा, परन्तु जब कभी अप्रसन्नता ने तुम्हें घेरा होगा, तव नरक भी यही दिखाई देने लगी होगी और तव तुम यहा से छुटकारा पाने के लिए आत्महत्या तक के लिए भी तैयार हो गए होओगे।

युवक! उत्साह और निरुत्साह, प्रसन्नता और अप्रसन्नता की ही तरह अन्य अनेक भावनात्मक युग्म भी तुम्हारे जीवन मे उथल-पुथल मचाते रहते हैं। यदि तुम उनमे से प्रत्येक के शुभाश को वढाते रहो और अशुभाश को दवाते रहो, तो तुम अवश्य ही एक दिन अपने समय के महापुरुप वन सकते हो, इसमे कोई सन्देह नही।

सौभाग्यनिर्मितेरवसर·

युवक ! कथमात्मनो दुर्भगत्वमाक्रोशसि ? तेन तु आत्मन शक्ति परीक्षितु तव सम्मुखमेष सदवसर समुपस्थापित । अनेनावसरेण त्व तमेव लाभ प्राप्तु शक्नोपि, य सौभाग्येन प्राप्तु पारयसि। दुर्भाग्य सौभाग्य च परस्पर न वहु दूरस्थम् । प्रत्येक दुर्भाग्य प्रच्छन्नरूपेण सौभाग्यमेव भवति, किन्तु मर्मज्ञताशून्योसुमान् तस्यैतद् रूप नैव वेत्तुमल भवति, ततस्तस्य लाभेन विरहितो भवति, किन्तु एषा तु स्वय पुरुपस्यैव असावधानता विद्यते, दुर्भाग्यस्यास्मिन् को दोष ? असावधानस्तु मनुष्य. स्वकीयात् सौभाग्यादपि कुह लाभान्वितो भवितु शक्यते ?

सौभाग्य तदैव सौभाग्य, यदा तत् उन्नतेरध्वान प्रशस्तीकर्तुमवसर-मुपस्थापयति, अन्यथा तद् भाविन कस्यापि दुर्भाग्यस्य कारणमात्र भूत्वाऽवतिष्ठते। दुर्भाग्यकारणीभूतात् सौभाग्यात् तु तद् दुर्भाग्य सदैव वरेण्य भवति, यदन्तत सौभाग्यकारण स्यात् । यदि त्व विश्वसिषि, यत् ते वर्त्तमानकालिक दुर्भाग्य विगतकालजनितया कयाचित् स्खलनया प्रसूत, ततस्त्वयास्मिन् विषये न मनागपि चिन्ताकुलितेन भाव्यम् । साम्प्रत त्वया केवलमिदमेव चिन्तनीय, यत् स्खलना-प्रसूतमिद दुर्भाग्य कथ सौभाग्यजनक निर्मातु शक्यम् । युवक ! एष एव उपयुक्तोवसर , यस्मिन् त्व निजसौभाग्य निर्मातु शक्नोषि ।

सौभाग्य-निर्माण का अवसर

युवक ! तुम अपने दुर्भाग्य को क्यो कोस रहे हो ? उसने तो तुम्हारे लिए अपनी शक्ति के परीक्षण का एक अवसर उपस्थित किया है। इस अवसर से तुम वही लाभ उठा सकते हो, जो सौभाग्य से उठाया जाता है। दुर्भाग्य और सौभाग्य परस्पर बहुत दूर की वस्तु नही होते। प्रत्येक दुर्भाग्य प्रच्छन्न रूप से सौभाग्य ही होता है। अमर्मज्ञ व्यक्ति उसके इस रूप को नही जान पाता और उसके लाभ से वचित रह जाता है। यह तो मनुष्य की अपनी ही असावधानी है। दुर्भाग्य का इसमे क्या दोष ? असावधान व्यक्ति तो अपने सौभाग्य से भी कहा लाभ उठा सकता है ?

सौभाग्य तभी सौभाग्य है, जबकि वह मनुष्य को उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करने का अवसर देता है, अन्यथा वह किसी भावी दुर्भाग्य का कारण-मात्र बनकर रह जाता है। दुर्भाग्य का कारण बनने वाले सौभाग्य से तो वह दुर्भाग्य सदैव अच्छा होता है, जो अन्तत सौभाग्य का कारण बन जाता है।

यदि तुम्हे विश्वास है कि तुम्हारा वर्तमानकालीन दुर्भाग्य किसी विगतकालीन स्खलना से उत्पन्न हुआ है, तो तुम्हे उसकी कोई चिन्ता नही होनी चाहिए। तुम्हें तो अब यही सोचना चाहिए कि स्खलना-प्राप्त इस दुर्भाग्य को महत्ता का जनक कैसे बनाया जा सकता है ? युवक ! यही उपयुक्त अवसर है, जिसमे तुम अपने सौभाग्य का निर्माण कर सकते हो।

प्रयासं मा त्याक्षीः

आत्मन योग्यताया श्रमे च विश्वसितु पुस करतलेऽविरत विजयो वसति। सदवसर हस्तयितु कस्मिश्चिदपि अन्यस्मिन् वस्तुनि विश्वसनात् आत्मसामर्थ्ये विश्वसनमेव अधिक लाभप्रद भवति।

अनेके मनुष्या एतादृशमवसर प्रतीक्षन्ते, यस्तेपा भाग्य हेलयैव परिवर्त्तयेत्। ते नैव विदन्ति यदेतादृशा सदवसरास्तु प्रतिदिनमायान्ति, परन्तु अज्ञानवशात् मनुष्यस्तान् तुच्छा इति मत्त्वा अवजानाति।

युवक ! त्वया प्रत्येकस्यावसरस्य लाभो निर्भयत्वेन नेतव्य । सामर्थ्येन साहसेन च विना कथमप्यस्मिन् जगति प्रगति कर्त्तुं न शक्या। आशङ्कानामाक्रमण तु न क्वाप्यसम्भवम्, अतस्त्व तत् प्रतिकारमविधाय स्वकीय वर्त्तमानमधिक सरल विधातु नैव शक्यसे।

यदि त्व आशावानसि, प्राप्तमवसर च नैव विनाशयसि, ततो जीवनमुन्नेतुमवश्यमवसर नेष्यसि। यदि कदाचित् सफलता साहाय्य नापि दद्यात्, तथापि त्वं साहसमासेवस्व, प्रयास च मा त्याक्षी, एकस्मिन्नहनि सफलताऽवश्य तव सङ्गिनी भविष्यति। जीवनस्यास्मिन्नाहवे पराजितस्तु वस्तुत स एव जायते, येन प्रयासोपि परित्यक्त ।

प्रयास मत छोड़ो

अपनी योग्यता और श्रम पर विश्वास करनेवाले के हाथ मे सदैव विजय रहती है। सुअवसर प्राप्त करने के लिए किसी अन्य वस्तु पर निर्भर रहने की अपेक्षा अपने सामर्थ्य का भरोसा रखना ही अधिक लाभदायक होता है। अनेक मनुष्य ऐसे अवसर की प्रतीक्षा मे रहा करते हैं, जो एक साथ ही उनके भाग्य को पलट दे। वे नही जानते कि ऐसे अवसर तो प्रतिदिन ही आया करते हैं, परन्तु अज्ञानवश मनुष्य उन्हे तुच्छ समझकर उनकी अवहेलना कर देता है।

युवक ! तुम्हें प्रत्येक अवसर का लाभ निर्भय होकर उठाना चाहिए। सामर्थ्य और साहस के विना इस जगत् मे आगे कैसे बढा जा सकता है, वर्तमान को अधिक सरल वनाने के लिए आशकाओ के आक्रमण का सामना करना ही होगा। यदि तुम आशावादी हो और प्राप्त अवसर को नही खोते, तो तुम्हे जीवन को उन्नत वनाने का अवसर अवश्य ही प्राप्त होगा। यदि कदाचित् सफलता साथ न भी दे, तो भी तुम अपने साहस को बनाये रखो और प्रयास मत छोडो। एक-न-एक दिन तुम्हे सफलता अवश्य मिलेगी। जीवन के इस सग्राम मे हारता तो वस्तुत वही है, जिसने प्रयास करना भी छोड दिया है।

कश्चिन्ताविषयः ?

युवक ! विशङ्कटमवारपारमिव विततमनन्तकार्यक्षेत्र तव सम्मुख विद्यते। तटोपविष्टस्त्व कियच्चिरमकिञ्चित्कर सन् एनदीक्षमाण स्थास्यसि ? अनेन निष्क्रियदर्शनेन अन्तत क खलु लाभ ? उत्तिष्ठ, ऊर्ध्वदमो भव, कर्त्तव्यस्यैतदाह्वान त्वा कियच्चिरादाकारयति। त्व तरुणोसि, तरुणश्च न कदापि कर्त्तव्योपेक्षा कर्त्तु क्षमते।

असम्भवमपि सम्भवपदे उपन्यस्यत् एतत् करतलयमल निरन्तर तव सहयोगि। अस्य अव्याहताया शक्तेरनन्तभाण्डागार त्वदर्थं सदैव उन्मुक्त विद्यते। अतोधुना तटे स्थित्वा दृश्यदर्शनस्यावसर कुहावशिनष्टि ? युवक ! उत्तिष्ठ, अग्रे प्रतिष्ठस्व, कार्यसमुद्रस्य मन्थन त्वयैव विधातव्यम्। अस्य भारस्य अन्यत्र क्वापि न्यासस्तु आत्मनो युवत्व कलङ्क-पङ्किल विधास्यति।

एतन्मन्थन पीयूषदायि भविष्यति उताहो गरलदायीति दुश्चिन्ता मा कदापि वृथा किञ्च, अमृत निपीय अमरता प्राप्तेभ्यस्ते महीयासो, ये गरल निपीय अमरता प्रापन्। अस्मिन् मन्थनकार्ये त्व पीयूष गरल वा किमपि प्राप्नुया, उभौ त्वाममर विधास्यत। युवक ! तत कश्चिन्ताविषय. ?

चिन्ता किस बात की ?

युवक ! अनन्त कार्यक्षेत्र तुम्हारे सामने विशाल समुद्र की तरह फैला हुआ है। तट पर बैठकर यो ही अकिंचित्कर बने हुए तुम इसे कब तक देखते रहोगे ? इस निष्क्रिय देखने से आखिर लाभ भी क्या है ? उठ खडे होओ, कर्तव्य की यह पुकार तुम्हें कभी से बुला रही है। तुम युवक हो, और युवक कभी कर्तव्य की उपेक्षा नही कर सकता।

असम्भव को भी सम्भव बना देनेवाले ये दोनो हाथ तुम्हारे सहयोगी हैं। इनकी अव्याहृत शक्ति का अनन्त भण्डार तुम्हारे लिए सदैव उन्मुक्त है, इसलिए अब तट पर बैठकर दृश्य देखने का अवसर कहा रह गया है ? युवक ! उठो, आगे बढो। कार्य-समुद्र का मन्थन तुम्हे ही करना है। इस भार को किसी दूसरे पर छोडना तो अपने युवकत्व को कलकित कर देने वाला होगा।

इस मन्थन से अमृत निकलेगा या विष, इस प्रकार की दुश्चिन्ता मे तुम्हे नही उलझना है। अमृत पीकर अमर बनने वालो से वे अधिक महान् हैं, जो गरल पीकर अमर बने हैं। इस मन्थन-कार्य मे अमृत या गरल कुछ भी मिले, दोनो ही तुम्हे अमर बना देंगे। तो फिर चिन्ता किस बात की है ?

निश्चलः समुत्तिष्ठ

युवक ! निश्चल समुत्तिष्ठ। दु खानामेष दुस्सह प्रवाहो यदि तव मौलेरुपरिष्टात् प्रवहमानो विद्यते ततस्त्व स्वचरणयुगल दृढमारोपय। स्वस्थानात् सूत्रमात्रमपि मेतस्ततो भू । दृषदिव समुन्नतशिरा स्थिरी भूयोध्वंदमस्तिष्ठ । यद्येकवारमीषदपि प्रकम्पितस्ततोय प्रवाहस्ते मूलमुन्मूलयिष्यति । तदानीमस्मिन्नास्पदे तवास्तित्वमसम्भवताकोटिमेव स्प्रक्ष्यति ।

अरे ओ भाग्यनिर्मात ! मा प्रकम्पस्व, एष प्रवाह सम्प्रत्येव निर्गतो भविष्यति। साहससम्भृतस्य तव जीवनस्यनास्मात् किमपि भयम्। भय तु कातरप्रकृतीना तेषा जायते ये समुपस्थितैर्दु खैर्विचलिता सजायन्ते। त्व त्वनेन दु खप्रवाहेण सम सघर्ष विधेहि, विजयस्ते सुनिश्चित भावी। कालक्रमाद् वातावरणेन यन्मालिन्य समुपचित्य त्वयि विन्यस्त तत् सकलमनेन प्रवाहेण धुत सद् दूरमपयास्यति, तव व्यक्तित्व च ततः प्रथमतोप्यधिकमुद्दीपिष्यते। अत एव कथयामि, युवक ! व्यग्रो मा भू , दुखानामभिमुख निश्चल समुत्तिष्ठ।

निश्चल खड़े रहो

युवक ! निश्चल खडे रहो। दु खो का यह दुस्सह प्रवाह यदि तुम्हारे सिर पर से गुजर रहा है, तो तुम अपने पैरो को मजबूत रखो। अपने स्थान से एक सूत भी इधर-उधर मत हटो। चट्टान की तरह सिर ऊपर उठाए स्थिर खडे रहो। एक बार थोडा-सा भी हिल जाने पर यह प्रवाह तुम्हारी जड खोद डालेगा। फिर तुम्हारा इसी स्थान पर टिके रहना असम्भव हो जाएगा।

अरे ओ भाग्य के निर्माता ! कापो मत ! यह प्रवाह अभी गुजर जाएगा। तुम्हारे साहसी जीवन को इससे कोई खतरा नही है। खतरा तो उन कायरो को होता है, जो दु खो के सामने विचलित हो उठते हैं। तुम इससे सघर्ष करो, निश्चय ही तुम्हारी विजय होगी। प्रलम्ब समय से तुम्हारे ऊपर वातावरण ने जो मैल सचित कर दिया है, इस प्रवाह मे वह सब धुलकर बह जाएगा और तुम्हारा व्यक्तित्व पहले से भी अधिक निखर उठेगा। इसीलिए मैं कह रहा हू, युवक ! घबराओ मत, दु खो के सामने निश्चल खडे रहो।

दैवस्य स्वामी

युवक ! यदैक. कुलाल विशिष्टैर्निजक्रियाकलापै साधारण मृत्-पिण्ड आवश्यकतानुरूपे भाजने परिवर्त्तयति, तदा त्वमपि मृत-पिण्डानुकारि निज भागधेयमवश्यमेव यथेच्छरूपे परिवर्त्तयितु क्षमसे ।

मा विस्मार्षी ,अद्यतनीयास्तव प्रत्येका क्रिया भाविनस्त्वद् भाग्यस्य रूप-निर्माणे साहाय्य ददाना सन्ति । त्व कीदृश दैवमभिलषसि—इत्यस्य निर्णयो यदि नाद्य तव मस्तिष्के भविष्यति, ततो न तस्य स्वेच्छानुकूल किञ्चिन्निश्चित रूप निर्मातुमर्हसि । अतो युवन् ! सावधानतापूर्वक अधुनैव तस्य स्वरूपनिर्णय विधाय तन्निर्माणकार्ये सलग्नो भव ।

युवक ! त्वया स्वसामर्थ्ये पूर्णत विश्वसितेन भाव्यम् । दैवसम्मुखे विनतीभूय गमन तेषामकर्मण्याना कार्य विद्यते, येषा सामर्थ्येन पराजय. स्वीकृत.। युवत्व न कदापि पराजयते, न च विवशतया नमति । अतो हि त्व दैवस्य दासत्व नहि, स्वामित्व साधयित्वा जीव ।

भाग्य के स्वामी

युवक ! जब एक कुम्भकार अपनी विशिष्ट क्रियाओं के द्वारा एक मृत्-पिण्ड को आवश्यकतानुसार किसी भी भाजन का रूप दे सकता है, तो तुम भी अपने भाग्य के इस मृत्-पिण्ड को अवश्य ही यथेच्छ रूप दे सकते हो। परन्तु याद रखो, आज की तुम्हारी प्रत्येक क्रिया तुम्हारे भाग्य के भावी-रूप के निर्माण मे सहायता दे रही है। तुम्हें कैसा भाग्य चाहिए, यह निर्णय यदि तुम्हारे मस्तिष्क मे नही होगा, तो तुम उसे इच्छानुसार कोई निश्चित रूप नही दे सकोगे। इसलिए सावधानीपूर्वक अभी से ही उसके स्वरूप का निर्णय करके उसके निर्माण मे लग जाओ।

युवक ! तुम्हे अपने सामर्थ्य पर पूरा विश्वास होना चाहिए। भाग्य के सामने झुककर चलना तो उन अकर्मण्य व्यक्तियो का काम है, जिनकी शक्ति ने हार स्वीकार कर ली हो। जवानी न कभी हारना जानती है और न कभी विवशतापूर्वक झुकना, इसलिए तुम भाग्य के दास नही, किन्तु स्वामी बनकर जिओ।

मा उदास्स्व

युवक ! मा उदास्स्व, मनस अनन्तप्रसन्नताना कस्याश्चिल्लघीयस्या दु खदघटनाया विनिमये अपव्यय मा विधा. । गृहसमागतानामतिथीनामिव विपत्तीना स्मयमानमुखेन स्वागत विधेहि । विपद अभिशापरूपा एव स्युरिति नास्ति किमपि कारण, ता वरदानरूपा अपि भवितु शक्यन्ते ।

युवक ! मा भैषी , दुखस्याग्नौ अतप्त्वा आत्मविश्वासस्यैतद् हिरण्य विशुद्ध भवितु नैव शक्यते । धूपो यावत् स्वय नैव प्रज्वलति तावन्नैव आत्मन सुरभि विस्तारयितु शक्नोति । प्रकाशविस्तारावसरे स्वय दीपस्य प्रज्वलनमावश्यकम्, ततस्त्वमस्मात् तापात् कि पलायसे ?

त्वयि य कश्चनापि कालिमा विद्यते स प्रज्वलनाद् नि.शेषीभवतु । उज्ज्वलीभवनाय एतन्नितान्तमावश्यकम् । जडीभूत तवेद चैतन्य दु खाना वज्रप्रहारैण जागरित भवतु । युवक ! प्रसन्नत्वेन एतान् प्रहारान् सोढ्वा प्रकाशपुञ्जो भव । मोदास्स्व ।

उदास मत होओ

युवक ! उदास मत होओ। मन की अनन्त प्रसन्नता का किसी तुच्छ-सी दु:खद घटना के विनिमय मे अपव्यय मत करो। गृह-समागत अतिथियो की तरह विपत्तियो का प्रसन्न-वदन से स्वागत करो। विपत्तिया अभिशाप ही होती हैं, इसका कोई कारण नहीं। वे वरदान भी बन सकती हैं।

युवक ! डरो मत, दु खो की अग्नि मे तपे बिना आत्मविश्वास का यह सुवर्ण निर्मल नही हो सकता। धूप जब तक स्वय नही जलती, तब तक अपनी सुगन्ध भी नही फैला सकती। प्रकाश फैलाने के लिए दीप का स्वय जलना आवश्यक है, तो फिर तुम इस ताप से भागते क्यो हो ?

तुम्हारे मे जो कुछ काला है, उसे जलकर शेष हो जाने दो। उज्ज्वल वनने के लिए यह नितान्त आवश्यक है। जडवत् बने अपने चैतन्य को दु खो के वज्र प्रहार से जागरित होने दो। युवक ! प्रसन्नता से इन प्रहारो को सहकर प्रकाशवान् वनो। उदास मत होओ।

मा रोदीः

मा रोदी, अरे ओ युवक ! मा रोदी । एतान्यश्रूणि तव अगाधान्तःकरणसमुद्रे भावनाशुक्तिभ्य समुद्भूतानि साहममौक्तिकानि सन्ति । अद्यैतानि कथमिव स्थानच्युतानि भूत्वा विकीर्णानि जायमानान्यवलोक्यन्ते ? किमेतानि केवल पानीयत्वेनैव मतानि तव ? अज्ञान ! किञ्चिद् विचारय, यत् तव युवकताया सुधा एतै सह घोलता प्राप्य प्रवाहमाना विद्यते ।

युवक ! तव नयन-सम्पुटसमुद्भूतेय कवोष्णधारा यदा कपोलपालिमाविलयती नीचैरवतरति तदावश्यमेव दर्शकजनाना हृदयानि आर्द्रीभावमुपागतानि भवेयु, किन्तु एतेन त्वमन्येषा दयापात्रमेव भवितु शक्यसे, न तु श्रद्धापात्रम् । किमिति तव कृते उपयुक्तम् ? युवक ! तव धमनीपु अजस्र प्रवहमानमेतदुष्ण शोणित अवश्यमेवास्य विरोधमुद्भावयिष्यति, अत एवाह वच्मि, युवक ! मा रोदी ।

रोओ मत

रोओ मत, अरे ओ युवक ! रोओ मत। ये आसू तुम्हारे अन्त करण के अगाध समुद्र मे भावनाओ की शुक्तियो से जन्म लेनेवाले साहस के मोती हैं। आज ये स्थान-च्युत होकर बिखरे जा रहे हैं। क्या इन आसुओ को तुम कोरा पानी ही समझ रहे हो ? बेसुध ! जरा ध्यान दो, तुम्हारी युवकता की सुधा इसमे घुल-घुलकर बही जा रही है।

युवक ! तुम्हारी आखो के सम्पुट मे से उद्भूत यह कवोष्ण धारा जब कपोलो को भिगोती हुई नीचे उतरती है, तब अवश्य ही दर्शको के हृदय आर्द्र हो उठते होगे, किन्तु इससे तुम औरो के दया-पात्र ही बन सकते हो, श्रद्धा-पात्र नही। क्या यह तुम्हारे लिए उपयुक्त है ? तुम्हारी धमनियो मे अजस्र बहता हुआ यह उष्ण शोणित अवश्य ही इसका विरोध करेगा। इसीलिए मैं कहता हू, युवक ! रोओ मत।

अधीरो मा भव

युवक ! धैर्यमासेवस्व, अधीरो मा भव। जीवनस्य नवनवानामाशाना विकासो भवितुमुत्कण्ठते। नयनतारकाणामुपरि तरणप्रवीणा एते नूतनस्वप्ना अवश्यमेव साकारतावाप्तिपथे प्रवर्त्तमाना विद्यन्ते भविष्यगर्भेन्तर्हिता अनन्तसम्भावना औत्सुक्येन तवासन्नमेवागच्छन्ति।

युवक ! तत कथमिमानि तवाक्षणोरश्रूणि प्राकट्यमवाप्तानि ? एतान्यवश्यमेव सम्भावनानामध्वान पङ्किल करिष्यन्ति । तव म्लान-स्याननस्येय श्यामला छाया तासा मार्गे तिमिरवितानमवितत्य नैव स्थास्यति। फणभृत्फूत्कारान् अनुकुर्वन्तो नासासम्पुटान्निष्क्रान्ता एते तव उष्णा नि श्वासास्ता भीपयितु न कदापि निर्लक्ष्या भविष्यन्ति ।

अश्रुभि, म्लानताभि, नि श्वासैश्च न केवल वर्तमान, किन्तु भविष्यमपि सन्देहदिग्ध जाजायते । अत एव कुण्ठताप्रतीकान् एतानादीनवान् दूर परिहाय निजसाफल्यमार्गं प्रशस्त विधेहि, अधीरो मा भव।

अधीर मत बनो

युवक ! जरा धैर्य रखो, अधीर मत बनो। जीवन की नव आशाओ का विकास होना ही चाहता है। आखो की पुतलियो पर तैरनेवाले ये नूतन स्वप्न अवश्य ही आकार धारण करने की राह पर चल रहे हैं। भविष्य के गर्भ मे छिपी अनन्त सम्भावनाए उत्सुकतापूर्वक तुम्हारी ओर ही आ रही हैं।

युवक ! तब फिर तुम्हारी आखो मे ये आसू क्यो छलछला रहे हैं ? ये तो अवश्य ही उनके मार्ग को पकिल बना डालेंगे। तुम्हारे म्लान मुख की यह श्यामल छाया उनके मार्ग मे अधकार फैलाए बिना नहीं रहेगी। भुजग के फूत्कार का अनुकरण करते हुए ये तुम्हारे नासा-रन्ध्रो से निकलनेवाले उष्ण नि श्वास उन्हें भयभीत कर देने मे कभी नही चूकेंगे। आसुओ, म्लानताओ और नि श्वासो से वर्तमान ही नहीं, भविष्य भी सदिग्ध हो उठता है। युवक ! कुण्ठा के इन प्रतीको से ऊपर उठकर अपनी सफलता का मार्ग प्रशस्त करो। अधीर मत बनो।

अवसरस्त्वां प्रतीक्षते

युवक ! यमवसर त्वमतिसाधारण मन्यसे स एव त्वदर्थ महान् भवितुं शक्यते, यदि त्व तस्य पूर्णमुपयोग कुर्या, स्वस्य समग्रा बुद्धिमपि च तस्मिन्नेव प्रयुञ्ज्या। निष्क्रियतामासेवमानस्त्व कियत्कालावधि अवसरमागमयिष्यसे ? उत्तिष्ठ, आत्मन क्रियाशक्तौ विश्वसन् स्वयमवसर स्योपकण्ठ प्रयाहि। दृढनिर्णयस्य तव सम्मुख नहि काचिदपि बाधा स्थातु प्रभविष्यति।

प्रत्येकोय क्षण अवसरस्यैक सन्देश नीत्वा तव सम्मुखमुपतिष्ठते। चक्षुषी समुन्मील्य त सम्यगालक्षय, स्वोद्देश्यसिद्धौ च प्रयुङ्क्ष्व। यत् कार्यं त्व विधातुमर्हसि, यस्य वा स्वप्न द्रष्टुमर्हसि, तदस्मिन्नेव क्षणे प्रारभस्व।

त्वया स्वकीय प्रगतिमार्ग स्वयमेव निर्मातव्यो भविष्यति, अत एकमपि क्षण व्यर्थं मा यापय, लक्ष्यसिद्धयै प्रतिष्ठस्व। सुख निजवाटिकाया त्वामाकारयेत्, तथापि तद्दिशि मा द्राक्षी। सम्मुख स्वयमवसरस्त्वा प्रतीक्षमाणो विद्यते।

अवसर

युवक ! जिस अवसर को तुम विलकुल साधारण समझते हो, वही तुम्हारे लिए एक महान् अवसर बन सकता है, यदि तुम उसका पूरा उपयोग करो और अपनी समस्त बुद्धि को उसी मे भिडा दो। यो ही निष्क्रिय बैठे अवसर की प्रतीक्षा कब तक करते रहोगे ? उठो और अपनी क्रिया-शक्ति पर विश्वास रखते हुए स्वय अवसर तक पहुचो। तुम्हारे दृढ निर्णय के सामने कोई भी वाधा नही टिक सकेगी।

प्रत्येक क्षण तुम्हारे सम्मुख अवसर का एक सन्देश लेकर उपस्थित होता है। तुम उसे आखें खोलकर पहचानो और अपने उद्देश्य की सिद्धि मे प्रयुक्त करो। जिस कार्य को तुम कर सकते हो तथा जिस कार्य का तुम स्वप्न देख सकते हो, उसे इसी क्षण प्रारम्भ कर दो। तुम्हे अपनी प्रगति का मार्ग स्वय ही बनाना होगा, अत एक क्षण भी व्यर्थ मत खोओ, लक्ष्य-सिद्धि के लिए चल पडो ! सुख तुम्हे अपनी वाटिका मे बुलाता हो, तो भी उधर मत झाको। सामने स्वय अवसर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

सफलता

युवक ! य पुमान् अनेकवार स्खलति, किन्तु पराजयमुरीकृत्य न कदाप्यवतिष्ठते, प्रतिवार पूर्वापेक्षयाधिक सावधानो भूत्वा पुन कार्यसलग्नो भवति, स निश्चितमेव तेन श्रेष्ठतरो भवति, य किलैकवार स्खलना विधाय पराजयते, अथवा पराजयमाशङ्क्य कार्यारम्भे उदास्ते । अनुमानमनेकवारमसत्य भवल्लोलोक्यते, अत कदाचिदात्मन. कस्मिश्चिदनुमाने असद्भूते सति यदि कश्चिदेव निर्णयति यन्नाहमग्रे कदाप्यस्मिन् कार्ये चरणन्यास विधास्यामीति, ततस्तस्य विकासस्तत्रैवावरुद्धो भवति ।

युवक ! असफलतावस्थायामपि त्व प्रतिवार प्रयतमानस्तिष्ठ । सजायमानाभिरसफलताभिरपि त्व भूयिष्ठमनुभवितु शक्नोसि, ततश्चैकदा स एवानुभव सफलतामाकृष्य तव सम्मुखमुपस्थापयिष्यति । असफलता, असफलता, असफलता—आसा योगो निश्चयेन सफलता एव भवति । अतो युवक ! गतिशीलता निरन्तरमनुतिष्ठ, सफलताया मार्गे आपतन्त्य इमा असफलता स्वत एवोल्लङ्घिता भविष्यन्ति ।

सफलता

युवक ! जो व्यक्ति अनेक बार गलती करता है, किन्तु कभी हार मानकर नही बैठता, हर बार अपेक्षाकृत अधिक सावधान होकर फिर कार्य मे जुट जाता है, वह निश्चित ही उस व्यक्ति से कही अधिक श्रेष्ठ होता है, जो केवल एक बार गलती कर, हार मान जाता है, अथवा हारने के भय से काम ही प्रारम्भ नही करता। अनुमान अनेक बार गलत निकल जाया करते हैं, अत एक बार अपने किसी अनुमान के गलत निकल जाने पर यदि कोई यह निर्णय करता है कि मैं आगे कभी इस कार्य मे नही पडूगा, तो उसका विकास वही रुक जाता है।

प्रत्येक असफलता के साथ तुम अपना प्रयत्न चालू रखो। उन असफलताओ से ही तुम बहुत कुछ सीख सकते हो। एक दिन वही सीख सफलता को तुम्हारे पास खीच लाएगी। असफलता, असफलता, असफलता—इनका योग अवश्य ही सफलता होता है। इसलिए युवक ! अपनी गति को निरन्तर चालू रखो, सफलता के मार्ग मे आ पडनेवाली असफलताए स्वय ही लाघ दी जाएगी।

विश्वासस्य ज्योतिः

युवक ! मानवजातेर्महत्तम-भविष्ये यदि तव विश्वासश्चकास्ति, तर्हि तन्निर्माणाय अस्मादेव क्षणादुद्यतो भव। वर्तमानस्य भित्तेरुपरि भविष्यस्य सुन्दरमन्दिरनिर्मितौ तवायमदमनीयो विश्वास अवश्यमेव फलदायी भविष्यति, यतो हि विश्वासस्य अन्तिमा परिणतिरेव कार्यं कथ्यते।

विश्वासस्तावदेकमेतादृश सम्बलमस्ति, यन्नीत्वा प्रस्थितस्य मार्गे सम्भाविता विश्वेपि व्यवाया स्वत एव दूरीभवन्ति। दारिद्रय न कदापि दृढविश्वासिनो मार्गं रोद्धु क्षमते, बुभुक्षा न तस्य तत्परता निरमितुमर्हति, सहायताया अल्पीयस्त्व न तस्योत्साहमवनेतुमल भवति, न च जनतया विहित उपहासस्त कार्यविरत कर्तु प्रभवति।

अस्मिन् ससारे स्थान तदर्थमेव विद्यते, य स्वकीय विश्वास नितरा जीवित रक्षति, त मूर्त्तं कर्तु च स्वकीय समग्रमपि सामर्थ्य तत्र नियोजयति। यस्य विश्वासो मृत स श्वसन्नपि भस्त्रेव निर्जीव एव।

युवक ! त्वमात्मनो विश्वासस्य ज्योति अखण्डरूपेण, अदम्यरूपेण च प्रज्वलित रक्ष। यदि त्वयैतदनुष्ठित, तर्हि अवश्यमेव वर्त्तमानस्तव सहचरो भविष्यति, भविष्यश्चानुचर।

विकास की लौ

युवक! मानव-जाति के महान् भविष्य पर यदि तुम्हे विश्वास है, तो उसके निर्माण मे अभी से जुट जाओ। वर्तमान की भित्ति पर भविष्य का सुन्दर भवन निर्माण करने का तुम्हारा अदम्य विश्वास अवश्य ही फलदायी होगा, क्योकि विश्वास की अन्तिम परिणति को ही तो कार्य कहा जाता है। विश्वास एक ऐसा सबल है, जिसे साथ लेकर चलने पर मार्ग की समस्त सभावित बाधाए अपने आप दूर हो जाती हैं। दृढ विश्वास का मार्ग गरीबी कभी रोक नही सकती, भूख उसकी तत्परता को दबा नही सकती, सहायता की कमी उसके उत्साह को नष्ट नही कर सकती और न ही जनता के द्वारा किया जानेवाला उपहास उसे कार्य-विरत कर सकता है।

ससार मे स्थान उसी के लिए है, जो अपने विश्वास को सदैव जीवित रखता है और उसको मूर्त रूप देने मे अपनी समस्त शक्ति भिडा देता है। जिसका विश्वास मर चुका होता है, वह भस्त्रा की तरह श्वास लेता हुआ भी निर्जीव ही है। युवक! तुम अपने विश्वास की लौ को प्रज्वलित रखो, अखण्ड रूप से और अदम्य रूप से। यदि तुम ऐसा कर पाए, तो अवश्य ही वर्तमान तुम्हारा सहचर होगा और भविष्य अनुचर।

नहि कापि इयत्ता

युवक ! अवस्थानुकूला व्यवस्था मान्या विधातु त एव उद्यता भवितुं शक्नुवन्ति, ये परिवर्त्तन कर्तुं नैव क्षमन्ते। तदेयमनन्ता शक्तिर्न कदापि स्थितिपालकतामुरीकर्त्तुमर्हति। मानवजातेरितिहास उच्चैर्घोष कथयति, यत् परिवर्त्तनमवश्यम्भावि।

जीवनस्योद्देश्य स्थितिरक्षा नहि, किन्तु उच्चतरस्थितेर्निर्माणमस्ति। प्राप्तमात्र स्वीकृत्य त एव सन्तुष्यन्ति, ये अग्रे प्रस्थानस्य मार्गं नैव विदन्ति, प्राप्यस्य च इयत्ता पुरैव सकुचिता निर्धार्य गच्छन्ति।

त्वया यत् किमपि प्राप्तमस्ति तदेव आधारशिलात्वेन सस्थाप्य स्वकीय जीवनभवन अधिकाधिकमुन्नत विधेहि। उन्नत्यै उपरि अनन्तोवकाश समानरूपेण उन्मुक्तश्चकास्ति। नात्र कश्चित्तव प्रतिद्वन्द्वी, यत्तो युगपत् सर्वेषा समुन्नतौ काचिद् बाधा समुद्भूता भवेत्। चिरपरिचिताया सीमाया उल्लङ्घने यत्तवात्मनि भयमस्ति तदेव तवोन्नतेर्बाधकम्। युवक ! इमा मोहशृङ्खला त्रोटयित्वा उन्नतभूमिको भव। प्रगतेर्नहि कदाचिद् कापि इयत्ता भवति।

इयत्ता नहीं

युवक ! अवस्था के अनुकूल व्यवस्था को मान्य करने मे वही उद्यत हो सकते हैं, जो परिवर्तन करने की क्षमता नही रखते। तुम्हारी अनन्त शक्ति को स्थितिपालकता कभी स्वीकार नही हो सकती। मानव-जाति का इतिहास पुकार-पुकारकर कहता है कि परिवर्तन अवश्यम्भावी है। जीवन का उद्देश्य स्थिति-रक्षा नही, किन्तु उच्चतर स्थिति का निर्माण करना है। प्राप्त-मात्र को स्वीकार कर वे ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, जिन्हे आगे वढने के मार्ग का पता नहीं होता और जो प्राप्य की इयत्ता को पहले से ही सकुचित वनाकर चलते हैं।

तुम्हे जो कुछ प्राप्त है, उसकी नीव पर अपने जीवन-भवन को और ऊचा उठाओ। ऊचाई के लिए ऊपर अनन्त आकाश पडा है, उसमे कोई तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी नही है, क्योकि सवके लिए एक साथ उन्नति का समस्त अवकाश समान रूप से उन्मुक्त है। चिर-परिचित सीमा को लाघने का तुम्हारा अपना ही भय तुम्हारी उन्नति मे वाधक वना हुआ है। युवक ! इस मोह-शृखला को तोडकर अपनी भूमिका को उन्नत वनाओ। प्रगति की कभी कोई इयत्ता नही होती।

एते क्षणाः

समय. प्रवाह इव अनवरत प्रवहमानो विद्यते। क्षणमात्रमपि नहि क्वापि तिष्ठति, उपायलक्षैरपि नैव प्रत्यावर्त्तते। तस्य विनाशनस्यार्थोस्ति, जीवनविनाश । जीवनम्, एक प्रलम्बावधिक समय, क्षण, एक स्वल्पावधिक समय, किन्तु क्षणपरम्परा सदा चलति, जीवनपरम्परा वरुद्धा भवति। क्षणाना मातत्य जीवनशतमपि तरितु नैव क्षमते, किमेक जीवनम् ?

युवक ! यदि त्व जीवनस्य किमपि मूल्य मनुषे, तर्हि क्षणाना मूल्य त्वया मन्तव्यमेव। क्षणान् निरर्थक व्यतीत्य जीवन सफलयितु कदापि नैव शक्यसे। ते मनुष्या कियति महति भ्रमे विद्यन्ते, ये निष्फल व्यतियत क्षणान् उपेक्षन्ते, परन्तु प्रायो व्यथितहृदया कथयन्ति, अहममुक कार्यमवश्य चिकीर्षामि, किन्तु समय नैव लभे। एव निगद्य किमु ते स्वमन एव नैव प्रतारयन्ति ?

वर्त्तमानता दधदेष क्षणोऽवश्यमेव तव कार्योपक्रमाय एक शुभो मुहूर्त्त । अविलम्बमेव त्वया निजमिष्ट कार्यमुपक्रमणीयम्। समयस्त्वा नैव प्रतीक्षिष्यते। यदि त्वया उपयुक्ते काले कार्य नैवोपक्रान्तम्, तर्हि तस्य पूर्तेर्नहि काचिदप्याशावशिनष्टि। यथासमयनिष्ठित कार्यमेव पूर्णता प्राप्य तव कार्यशक्तिमधिकाधिकमुद्दीपयिष्यति।

ये क्षण

समय प्रवाह की तरह अनवरत बहता रहता है, एक क्षण के लिए भी रुकता नही, लाख प्रयत्न करने पर भी मुडता नही। उसे नष्ट कर देने का अर्थ है, जीवन को नष्ट कर देना। जीवन, एक काफी लम्बा समय, क्षण, एक बहुत छोटा समय, किन्तु क्षण-परम्परा चलती रहती है, जीवन-परम्परा रुक जाती है। क्षणो के सातत्य को एक जीवन तो क्या, सौ जीवन भी पार नही कर सकते।

युवक! यदि तुम अपने जीवन का कुछ मूल्य समझते हो, तो तुम्हें क्षण का मूल्य समझना ही होगा। क्षणो को निरर्थक गवाकर जीवन को सफल नही बनाया जा सकता। वे व्यक्ति कितने भ्रम मे हैं, जो निष्फल बीतते हुए क्षणो की ओर ध्यान नही देकर प्राय यह शिकायत करते रहते हैं कि मैं अमुक कार्य अवश्य करना चाहता हू, किन्तु समय नही मिल रहा है। क्या वे यह कहकर अपने मन को धोखा नही दे रहे हैं? यह क्षण, जो कि वर्तमान है, अवश्य ही कार्य प्रारम्भ के लिए एक शुभ मुहूर्त्त है। तुम्हें अविलम्ब अपने इष्ट कार्य का प्रारम्भ कर देना चाहिए। समय तुम्हारी प्रतीक्षा नही करेगा, यदि तुमने उपयुक्त समय पर कार्य प्रारम्भ नही किया तो फिर उसके पूरे होने की कोई आशा नही है। यथा-समय किया हुआ कार्य ही पूरा होकर तुम्हारी कार्य-शक्ति को और उद्दीप्त करेगा।

अद्यैव

युवक ! अद्यतनकार्यमद्यैव समापय । मैतद् विस्मृत्यापि श्वोर्थं त्यज । 'श्व' एक एतादृशो राक्षसोस्ति, येन पर शता प्रतिभावन्त प्रसह्य उदरस्थीकृता । अस्य तेजस्वी प्रतलोऽसङ्ख्ययोजनाना निगरणाना-मोटितवान् ।

अद्यतनकार्यं स्व -कालार्थ परिवर्त्तयितु यावती शक्तिर्व्ययते, तावत्या तु तदद्यैव कर्त्तुं शक्यम् । त्व समर्थ कर्मशीलश्च सन्नपि कथ श्व-साहाय्यमभिलषसि ? निश्चितमेव एतत्तु असमर्थताया अकर्मण्यतायाश्च द्योतकमस्ति ।

त्वया यत् कार्यमद्यैव पूरयितु सगीर्णं, तस्य विरोधे आलस्य यदि स्वकीयेन समस्तेनापि सैन्येन सह अभिक्रमेत, तथापि त्व स्वनिश्चयात् मापसर । तदुत्पादिताभि स्थितिभि सह दार्ढ्येन युद्ध्वा विजयस्व, जीवनस्य रणस्थले स्वकीय विजयध्वज चारोपय ।

युवक ! एप तव परीक्षासमयोऽस्ति । यदि त्वमेतादृशेऽवसरे एव विचारयसि, यत् श्व करिष्यामि, अधुनैव कैतादृशी त्वरा ? ततस्त्व निश्चितमेव पराजयसे । एतादृशा क्षणा एव जीवनस्य साफल्यमसाफल्य वाञ्छयितु व्यवस्यन्ति । एतेष्वेव क्षणेषु त्वमात्मनो निर्णायकबुद्ध्या प्रकाशे स्वकीया विजययात्रामुपक्रमस्व ।

आज ही

युवक ! आज का कार्य आज ही समाप्त कर दो। इसे कल पर भूलकर भी मत छोडो। 'कल' एक ऐसा राक्षस है, जिसने सैकडों प्रतिभावानो को उदरस्थ कर लिया। इसके तेज पजे असख्य योजनाओ का गला घोट चुके हैं। जितनी शक्ति आज के कार्य को कल पर टालने मे क्षय होती है उतनी शक्ति से आज का कार्य आज ही किया जा सकता है।

तुम समर्थ और कर्मठ होकर कल का सहारा क्यो लेते हो ? निश्चय ही यह तो असमर्थता और अकर्मण्यता का द्योतक है। तुमने जिस कार्य को आज ही पूरा कर लेने का निश्चय किया है, उसके विरुद्ध आलस्य अपनी सारी सेना लेकर खडा हो जाए, तो भी तुम अपने निश्चय से मत हटो। दृढतापूर्वक स्थिति का सामना करते हुए उस पर विजय पाओ और अपना झण्डा जीवन के मैदान मे गाड दो।

युवक ! यह तुम्हारी परीक्षा का समय है। यदि तुम ऐसे अवसर पर यह सोचते हो कि चलो कल कर लेंगे, अभी इतनी क्या शीघ्रता है, तो तुम निश्चय ही पराजित होते हो। जीवन पर सफलता या असफलता की छाप लगाने वाले ऐसे ही क्षण होते हैं। इन्ही क्षणो मे अपनी निर्णायक बुद्धि के प्रकाश मे तुम अपनी विजय-यात्रा का उपक्रम करो।

उत्साहं मोपशामय

युवक ! यदि त्व किमपि कार्यं कर्त्तुं निरणैषीस्तर्हि तत् त्वरितमेव पूरयितु प्रयतस्व । यदि तस्य पूर्तौ विलम्बो भविष्यति, तर्हि क्रमशो मानसिक शैथिल्य वर्धिष्यते, निश्चयश्च ते विशीर्णता प्राप्स्यते । अन्तत स ससारस्य कोलाहले विलीनो भविष्यति, अथवा आलस्यपङ्के निमङ्क्ष्यति ।

कार्यकरणस्य तुलना बीज - वपन - क्रियया कर्त्तुं शक्यते । यदि बीजमूचितसमये नोप्त, तर्हि तस्य विकासस्य नहि काचिदाशा कर्त्तुं शक्यते ।

कार्यारम्भकाले य उत्साहो भवति, त कथमप्युपशान्ति मा गमय, किञ्च, तस्य विद्यमानतायामेव किमपि कार्यं समुचितरूपेण सम्पादयितु शक्यम् । उचितादधिके समयव्यये प्राय उत्साहभङ्गो जायत एवेति त्वया सावधानेन तस्मात् स्वात्मा रक्ष्य । लोहपिण्डे उपशान्ते घनाना कियन्तोपि आघाता स्यु, न ते किमपि फलदायिनो भवन्ति ।

ठंडा मत होने दो

युवक ! यदि तुमने किसी कार्य को करने का निश्चय किया है, तो उसे तत्काल ही पूरा करने का प्रयास करो। यदि उसकी पूर्ति मे विलम्ब होगा तो फिर क्रमश मानसिक शिथिलता वढेगी और तुम्हारा निश्चय छिन्न-भिन्न होने लगेगा। अन्तत वह ससार के कोलाहल मे विलीन हो जायगा, अथवा आलस्य के दलदल मे फस जाएगा। कार्य करने की तुलना बीज वोने की क्रिया से की जा सकती है। यदि वह ठीक समय पर नही वोया गया, तो फिर उसके पनपने की कोई आशा नही की जा सकती।

कार्य प्रारम्भ करते समय जो उत्साह होता है, उसे ठडा मत होने दो, क्योकि उसे वनाए रखकर ही किसी कार्य को समुचित रूप से सम्पन्न किया जा सकता है। उचित समय से अधिक समय लगने पर प्राय उत्साह-भग हो ही जाया करता है, उससे तुम्हे सावधानीपूर्वक वचना चाहिए। लोहा ठडा हो जाने के वाद उस पर घन की कितनी ही चोटें मारी जाए, वे कोई फलदायक नही हो मकती।

आत्मविश्वासः

युवक । जीवनस्य तमो-निचिते मार्गे आत्मविश्वासस्य प्रकाश नीत्वा व्रज । तव सामर्थ्यसम्मुख नास्ति किमपि कार्यमसम्भव, केवल तत्र तव दृढविश्वासेन भवितव्यम् । यावदसौ विश्वास नोत्पद्यते, तावदशेषाण्यपि कर्माणि असम्भवान्येव भवन्ति । जीवने ममागताना बह्वीनामसफलताना मूलकारण आत्मविश्वासस्याल्पीयस्त्वमेव भवति, अतस्त्व स्वकीय-शक्तावखण्ड विश्वास सम्पादय । अनेन तवान्या सुप्ता शक्तयोपि जागरिता भविष्यन्ति । वस्तुत शक्तिविश्वास एव शक्तिसमन्वितो भवति ।

ते मनुष्याः कियन्तो निर्बला सन्ति, ये नात्मन शक्तौ विश्वसन्ति । ते किमपि कार्यं प्रारब्धु सकुचन्ति असाफल्यभय तेषा सामीप्य कदापि नैव मुञ्चति । न ते कस्मिन्नपि क्षेत्रे दाढ्र्येन आत्मनोऽधिकार घोषयितु क्षमन्ते । आत्मविश्वासाभावस्येय प्राणान्तकारिणी दुर्बलता समाजे तेषामग्रणीत्व न कदापि सहते ।

युवक । जनता तमेव विश्वसिति, य स्वय स्व विश्वसिति, अतस्त्व स्वकीयमात्मविश्वास क्षणार्थमपि मा श्लथीकुरु । ससम्मान सफल च जीवन व्यत्येतु एतदत्यन्तमावश्यक यत् तव प्रत्येक कार्यमात्मविश्वासे-नाप्यायित भवेत् ।

आत्मविश्वास

युवक ! जीवन की अधेरी गली मे आत्मविश्वास का प्रकाश साथ लेकर चलो। तुम्हारे सामर्थ्य के सामने कोई भी कार्य असम्भव नही है। केवल तुम्हें अपने सामर्थ्य मे दृढ विश्वास होना चाहिए। जव तक यह विश्वास पैदा नही हो जाता, तव तक सभी कार्य असम्भव ही रहेगे। जीवन मे मिलने वाली वहुत-सी असफलताओ का मूल कारण आत्मविश्वास की कमी ही होता है। तुम अपनी शक्ति मे अखण्ड विश्वास करो, इसके सहारे तुम्हारी अन्य गुप्त शक्तियां भी जागरित हो उठेंगी। वस्तुत शक्ति का विश्वास ही शक्ति से भरा हुआ है।

वे मनुष्य कितने कमजोर हैं, जिन्हे अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं होता। वे किसी भी कार्य मे हाथ डालते सकुचाते हैं। असफलता का भय कभी उनका पीछा छोडता ही नही। वे किसी भी क्षेत्र मे दृढता के साथ अपना अधिकार घोषित नही कर सकते। स्वय पर अविश्वास करने की यह प्राणान्तक दुर्वलता उन्हे समाज मे कभी आगे नही आने देती।

युवक ! जनता उसी पर विश्वास करती है, जो स्वय अपने पर विश्वास करता है, अत तुम अपने आत्मविश्वास को एक क्षण के लिए भी शिथिल मत होने दो। सम्मान और सफलता का जीवन व्यतीत करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि तुम्हारा प्रत्येक कार्य आत्मविश्वास से आप्यायित हो।

योग्यता कुशलता च

तव योग्यता कियत्यपि साधारणास्तु, किन्तु त्व तस्या उपयोग कुशलतापूर्वक कुरु। अकुशलतापूर्वक प्रयुक्ता असाधारणयोग्यतापि केवलमुपहासमात्रीभूय तिष्ठति, यदा च कुशलतापूर्वक प्रयुक्ता साधारण-योग्यता एक नव्य चमत्कारमुत्पादयितु क्षमते। या कठिनतामवलोक्य योग्यता मार्गभ्रष्टा भवति ता कुशलता सहजतया विजयते।

युवक! योग्यताया विश्वासे एव केवल मा तिष्ठ, तस्या प्रयोग-कौशलेप्यवश्य ध्यान देहि। योग्यता, केवल करणीय कार्य वेत्ति, किन्तु कुशलता, तस्य करण वेत्ति। योग्यताया पार्श्वे केवल मार्गश्चकास्ति, किन्तु कुशलताया पार्श्वे तत्र गमन-क्षमता चकास्ति। अत एव युवक! स्वकीया योग्यता कौशलेन सह सयोजय। सफलतायै अतो व्यतिरिक्तो नान्य कश्चित् प्रशस्त पन्था।

योग्यता और कुशलता

तुम्हारी योग्यता चाहे कितनी भी साधारण क्यो न हो, किन्तु तुम उसका उपयोग कुशलतापूर्वक करो। अकुशलतापूर्वक प्रयुक्त असाधारण योग्यता भी केवल एक उपहास मात्र बनकर रह जाती है, जबकि कुशलतापूर्वक प्रयुक्त साधारण योग्यता एक नया चमत्कार पैदा कर सकती है। जिस कठिनाई को देखकर योग्यता मार्ग से भटक जाती है, उसी पर कुशलता सहजतया विजय पा लेती है।

युवक! केवल अपनी योग्यता के भरोसे ही मत बैठो, उसके प्रयोग की कुशलता पर भी अवश्य ध्यान दो। योग्यता केवल करने योग्य कार्य को जानती है, जबकि कुशलता उसको करना जानती है। योग्यता के पास केवल रास्ता है, जबकि कुशलता के पास उस पर चलने की क्षमता है। इसीलिए युवक! तुम अपनी योग्यता को कुशलता के साथ जोड दो। सफलता के लिए इसके अतिरिक्त और कोई प्रशस्त मार्ग हो नही सकता।

सावधानः स्तात्

विश्वमानसे एका व्याकुलता प्रतीयते। चतुर्दिक्षु विषाक्त वातावरण स्वपरिधि विस्तारयत् सर्वं स्वस्मिन् विलयीचिकीर्षति। उत्स्पन्दमाना सर्वनाशस्येय सरित् स्वलहरीणा प्रलयनृत्य दर्शयितुमातुरता धत्ते। मानव-मानस-समुद्भूता जुगुप्सा परमाण्वस्त्रव्याजेन मूर्ततामधारयत्। एता-दृशेऽनेहसि हिंसाया अट्टहास, अहिंसायाश्च करुणक्रन्दन युगपत् तव श्रवण-सम्पुटसम्पातमवाप्नुयात्, तर्हि नहि किमप्याश्चर्यम्।

युवक! विश्वनयनानि तव सम्मुखमालोकन्ते। त्वयाद्य एष निर्णयो घोषितव्य एव, यत् त्व चिरपरिचिताया हिंसाया अट्टहासे सहयोगी भविष्यसि, उताहो चिरपीडिताया अहिंसाया क्रन्दनप्रतिकारकार्ये? तवाद्य-तनकृतेऽस्मिन् निर्णये एव विश्वस्य जीवन मरण वाऽवलम्बितमस्ति। अतो युवक! सावधान स्तात्।

सावधान !

विश्व-मानस मे एक घुटन-सी प्रतीत हो रही है। चारो ओर का विषाक्त वातावरण अपनी परिधि को सिकोडता हुआ सबको अपने मे समा लेना चाहता है। सर्वनाश की उफनती हुई नदी अपनी लहरो का प्रलय-नृत्य दिखलाने को आतुर है। मनुष्य के मन की घृणा परमाणु-अस्त्रो के रूप मे मूर्तता धारण कर चुकी है। ऐसे समय मे हिंसा के अट्टहास और अहिंसा के करुण क्रन्दन की आवाज एक साथ तुम्हारे कानो मे पड रही हो, तो कोई आश्चर्य नही।

युवक ! विश्व-नयन तुम्हारी ओर झाक रहे हैं। तुम्हे आज यह निर्णय घोषित करना है कि तुम चिर-परिचिता हिंसा के अट्टहास मे सहयोग दोगे, अथवा चिर-पीडिता अहिंसा के क्रन्दन का प्रतिकार करने मे ? तुम्हारे आज के इस निर्णय पर ही विश्व का जीवन या मरण अवलम्बित है। इसीलिए युवक ! सावधान होकर निर्णय करो।

प्रथमश्चरणविन्यासः

अद्य जगति शान्तेरावश्यकतास्ति । परितो विवर्द्धमानमशान्तेर्वाता-वरण साध्वस-समुद्भावक भाति । मानव-जातिर्यद्दिनात् स्वत्व-सम्भालनयोग्याभूत्, तद्दिनादेव सा शान्ति मृगयमाणा विद्यते। अस्मिन्नेवान्वेषणे सा पारिवारिक जीवन प्रारेभे, तथा चास्मिन्नेव क्रमश कौटुम्बिक, सामाजिक, राष्ट्रीय जीवन चापि प्रारभत, परन्तु साद्य शान्ति-स्थाने अशान्ते-स्तत् तट प्रापत्, यत स्वल्पमप्यग्रे गमनात् सर्वनाशोऽवश्वयभावी । मानवजातेरिम सर्वनाश किमु केवल निरी-क्षकीभूय एव त्व निरीक्षिष्यसे ?

युवक ! अद्य तव परीक्षास्ति । एषा साऽन्तिमा परीक्षास्ति, या चेदिदानी नैव दास्यते, तत सम्भवत कदापि दातु नैव शक्ष्यते । अतएव एतस्माद् विनाशाद् मानवजाति-ममुद्धार भार स्वय त्वया स्वस्कन्धयोरुपरि नेय ।

विश्व-क्षितिज-पारादागच्छन् य एको मन्दस्वर श्रूयते स शान्ते स्वरोस्ति । किमु त्व शृणोषि तम् ? भ्रान्तया मानव-जात्या तदभिमुखमेव गमनीयमस्ति, किन्तु अधुनावधि सा मन्देग्धि । युवक ! साहस कुरु, तद-भिमुख प्रथमश्चरणविन्यासस्त्वयैव विधेय । त्वदनु समस्ता मानवजाति-र्गन्तुमुद्यतास्ति ।

पहला कदम

आज विश्व को शान्ति की आवश्यकता है। चारो ओर बढता हुआ अशाति का वातावरण भयभीत कर देने वाला है। मनुष्य-जाति ने जब से होश सभाला है, तब से वह शान्ति की खोज मे रही है। इसी खोज मे उसने पारिवारिक जीवन बिताना प्रारम्भ किया था और फिर इसी खोज मे क्रमश कौटुम्बिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन भी प्रारम्भ किया था। परन्तु शान्ति के बदले आज वह अशान्ति के उस कगार पर पहुच गई है, जहा से थोडा-सा भी आगे बढने पर सर्वनाश अवश्यम्भावी है। युवक! मानव-जाति के इस आत्मघात को क्या तुम एक निरीक्षक मात्र बनकर यो ही देखते रह सकोगे?

आज तुम्हारी परीक्षा है। यह वह आत्म-परीक्षा है, जो इस समय नही दी जाएगी, तो सम्भवत फिर कभी नही दी जा सकेगी। मानव-जाति को इस विनाश से बचाने का भार अवश्य ही तुम्हे अपने पर लेना चाहिए। धिरत-क्षितिज के उस पार से जो एक धीमी-सी आवाज आ रही है, वह शान्ति की आवाज है। क्या तुम उसे सुन रहे हो? भटकी हुई इस मानव-जाति को उस ओर ही जाना है, किन्तु वह झिझकती है। युवक! साहस करो और पहला कदम तुम ही उठाओ। तुम्हारे पीछे सारी मानव-जाति चलने को उद्यत है।

कः स्यात् ?

विषादस्य निष्करुणा शरा यदा हृदय शतशो वेधयन्ति, तदा क. स्यादेतादृशो यो नयनमार्गादपसृत्य पतन्तमश्रुप्रपात रोद्धुमर्हेत् ?

अन्तरङ्गोत्तापस्य विवशता यदा वातावरणमुष्णीकुर्यात्, तदा क स्यादेतादृशो यो नि श्वासप्रभञ्जनेन कम्पमानान् अधरपल्लवान् स्थिरीकर्त्तु-मुत्सहेत ?

सङ्घर्षमयजीवनस्य सङ्कीर्णपथे विकीर्णै कण्टकैर्विद्धौ चरणौ यदा रक्तरञ्जितौ स्याताम्, तदा क. स्यादेतादृशो य स्वगन्तव्ये दत्तदृष्टि सन् न ततो विरमेत्, न च गतिक्रमभङ्ग विदध्यात् ?

विश्वासस्य प्रत्येक शिविर यदा सन्देहसेनया आक्रम्यते, तदा क स्यादेतादृशो य सुस्थिरतया तद्विरोधे युध्येत, विजयध्वज च तत्रैव आरो-पयेत् यत्र सन्देहेन पदन्यासो विहित स्यात् ?

युवक ! अह सम्यग् जाने, तादृश केवल त्वमेवाऽसि। तव युवत्व सर्वैर्विषादैरपराजेयम्, उत्तापैरप्रकम्पितम्, कण्टकैर-विचलितम्, सन्देहैश्चा-नाक्रान्त सत् जगते प्रमोदस्य, शान्ते, निर्विघ्नतायाः, श्रद्धाशीलतायाश्च सन्देश दातु शक्नुयात्। युवक ! त्वामतिरिच्य जगदुद्धारक क स्यात् ?

कौन हो सकता है ?

विपाद के निष्करुण तीर जब हृदय को छलनी करके रख देते हैं, तब कौन व्यक्ति ऐसा होगा जो अपनी आखो के मार्ग से गिरने वाले अश्रुओ के प्रपात को रोककर रख ले ?

अन्तरग के उत्ताप की विवशता जब वातावरण को उष्ण बना देती है, तब कौन ऐसा होगा जो नि श्वासो के उठते हुए अधड से काप-काप जाने वाले ओष्ठ-पल्लवो को स्थिरता प्रदान कर सके ?

सघर्पमय जीवन के बीहड पथ पर बिखरे काटो से जब पैर लहूलुहान हो जाए, तब कौन ऐसा होगा जो अपने गन्तव्य की ओर आखें गडाए चलता ही जाए और अपनी गति के सन्तुलन को बिगडने न दे ?

विश्वास के हर पडाव को जब सन्देह की सेना आ घेरती है तब कौन ऐसा होगा जो स्थिर रहकर उसका सामना करे और विजय-ध्वज वही पर गाडे, जहा सन्देह ने अपने पैर रखे हैं ?

युवक ! मैं समझता हू, वह व्यक्ति तुम्ही हो सकते हो। तुम्हारा यौवन सब विपादो मे अपराजेय, उत्तापो से अप्रकम्पित, काटो से अविचलित और सन्देहो से अनाक्रान्त रहकर जगत् को हर्ष, शान्ति, निर्विघ्नता और श्रद्धाशीलता प्रदान कर सकता है। युवक ! जगत् का उद्धारक तुम्हारे अतिरिक्त और कौन हो सकता है ?

जाग्रत् तारुण्यम्

त्व तरुणोऽसि, अत साम्प्रत तरुणोचितसाहसस्य महत्तासु न किमप्याश्चर्यमनुभवसि, परन्तु कश्चिदपि स्थविरस्तव शक्त्या, उत्साहेन, स्फूर्त्या च आश्चर्याभिभूतो भवितु शक्यते।

अभावे भावस्य मूल्यमुद्बुद्ध भवतीति मनुजस्य दृष्टिपद्धतेरेवाय दोष । यदि स्वय भावस्य विद्यमानतायामेव तस्य मूल्याङ्कन कर्त्तु शक्येत, तर्हि कियदुत्तम स्यात् ? तादृश्या स्थितौ कश्चिदपि युवा न स्वशक्तेरेकामपि कणिका व्यर्थीकर्त्तुमभिलषेत्।

किमेव प्रकृत्या मनुजस्योपहासो विहित , यतो यदा स शक्तिमान् स्यात्, तदा शक्तिमूल्याङ्कने जागरितो न स्यात्, यदा च तस्मिन् विषये जागरित स्यात्, तदा शक्ति केवल स्मृतिविषयता प्रपद्येत ?

युवक ! किमु त्व प्रकृतेरिममुपहासमाह्वातु शक्यसे ? मया मन्यते, यत् त्व निश्चयमेवैतत् सामर्थ्यं बिभर्षि। आदिकालादेव मनुष्यो न केवल प्रकृतेराह्वानमेव स्वीचकार, किन्तु स्वय तामाहूय बहुधा पराजितामपि चकार। यदा कदाचित् त्व प्रकृते सम्मुखमाकुञ्चितजानुर्भवितु विवशो भवसि, तदाऽहमनुभवामि, यत् ते तारुण्य प्रसुप्तम्, यदा च प्रकृतिस्तव सम्मुख नन्तु विवशा स्यात्, तदा निश्चितमेव तव जाग्रद् तारुण्य विद्यते। मा विस्मार्षीः, जाग्रत् तारुण्य कदाप्याकुञ्चितजानु न भवति।

जागता हुआ यौवन

तुम युवक हो, अत तभी तुम्हे युवकोचित साहस की महत्ताओ पर कोई आश्चर्य नही होता। परन्तु कोई भी वृद्ध तुम्हारी शक्ति से, उत्साह से, स्फूर्ति से चकित हो सकता है। अभाव मे भाव का मूल्य प्रकट होता है, यह मनुष्य के देखने की पद्धति की कमजोरी है। यदि स्वय भाव की विद्यमानता मे ही उसका मूल्याकन किया जा सके, तो कितना उत्तम हो ? उस स्थिति मे कोई भी युवक अपनी शक्ति की एक कणिका भी व्यर्थ नही खोना चाहेगा। क्या प्रकृति ने मनुष्य के साथ यह उपहास किया है कि जब उसके पास शक्ति हो, तब सही मूल्याकन की उत्सुकता न हो और जब वह इस विषय मे जागरूक होने लगे, तब शक्ति उसकी स्मृति का विषय बन जाए ?

युवक ! क्या तुम प्रकृति के इस उपहास को चुनौती दे सकते हो ? मेरी मान्यता है कि तुम निश्चय ही उसे चुनौती दे सकते हो। मनुष्य आदि-काल से ही प्रकृति की चुनौतियो को स्वीकार ही नही करता आया है, अपितु स्वय उसे चुनौतिया देकर पराजित भी करता आया है। जब कभी तुम प्रकृति के सामने घुटने टेकने की बात सोचने लगते हो, तब मुझे लगता है कि तुम्हारा यौवन सोया हुआ है। जब प्रकृति तुम्हारे सामने घुटने टेकती है, तब निश्चय ही तुम्हारा यौवन जाग रहा होता है। याद रखो, जागता हुआ यौवन कभी घुटने नही टेकता !

सर्व प्राप्स्यते

चतुर्दिग्व्याप्तेऽस्मिन् विचित्रचाकचिक्ये यदि त्वमुन्मिषितनयन सन् स्थातुमर्हेस्तर्हि मार्गं सदैव तव चरणाधीन एव स्थास्यति, परन्तु यदि त्वमेकमपि क्षण नयने निमील्य किञ्चिद् विश्रान्तुमिच्छसि, तर्हि निश्चितमेव दिग्भ्रान्त सन् मार्गच्युतो भविष्यसि ।

यदि त्वया लक्ष्यावाप्तये दृढ सङ्कल्पितम्, तर्हि क्षणमपि तत् त्वच्चक्षुरविषयो मा भूत् । लक्ष्याद् दृष्टेरपनयनस्यार्थोऽस्ति, निर्णीत लक्ष्यमपहाय तद् विकल्पान्वेषणम्, किन्तु वस्तुवृत्त्या एतत् कार्यं भ्रान्तिपूर्णम् । लक्ष्यमेकमेव भवति, तत्र विकल्पस्थापनप्रयासस्तव गति-प्रवाह समापयिष्यति ।

युवक ! निर्विकल्पतया गच्छ, निरन्तर च गच्छ । प्रलोभनशतैरपि मावरुद्धो भव, विपत्तिपरम्पराभिर्मा बिभीहि, विरोधाक्रमणैर्मा प्रत्यावर्त्तस्व, निर्णीतलक्ष्याभिमुखमेव केवल याहि । तत्-प्राप्त्यर्थमात्मन समस्त समय पौरुष च तत्रैव नियोजय । एतस्मिन् कार्ये न त्वया किमपि हास्यते, अपितु सर्वं प्राप्स्यते एव ।

सब कुछ पाओगे

चारो ओर की इस विचित्र चकाचौंध मे यदि तुम अपनी आखें खुली रख सकते हो, तो तुम्हारा मार्ग सदैव तुम्हारे ही पैर के नीचे रहेगा। परन्तु यदि तुम एक क्षण के लिए भी आखें मूदकर कुछ विश्राम चाहते हो, तो निश्चित ही दिग्भ्रान्त होकर मार्ग खो बैठोगे। यदि तुमने लक्ष्य तक पहुचने का दृढ संकल्प किया है, तो उस तक तभी पहुच सकते हो, जब कि वह एक क्षण के लिए भी तुम्हारी आखो से ओझल न होने पाए। आखें मूदने का तात्पर्य है, लक्ष्य के लिए विकल्प की खोज। किन्तु सच मानो, यह एक भ्रान्ति है। लक्ष्य एक ही हो सकता है। उसमे विकल्प स्थापित करने का प्रयास करोगे, तो तुम्हारी गति का प्रवाह समाप्त हो जाएगा।

युवक! निर्विकल्प होकर चलो और निरन्तर चलते रहो। किसी भी प्रलोभन से रुको मत, किसी भी विपत्ति से डरो मत, किसी भी विरोध से मुडो मत, सीधे अपने निर्णीत लक्ष्य की ओर ही आगे बढो। उसकी प्राप्ति के लिए तुम अपना सारा समय तथा सारा पौरुष लगा दो। तुम खोओगे कुछ भी नही और पाओगे सब कुछ।

प्रगतेः द्वौ पादौ

युवक ! प्रगतेरिच्छुकस्त्वमिति सत्यम्, परन्तु किमु त्वया नाधिगम्यते यत् प्रगतेरपि त्वद्वदेव द्वौ पादौ स्त ? तव चरणयोर्व्यक्तिश किमपि नाम निश्चित नास्ति, परन्तु प्रगतेरुभावपि पादौ पृथक्-पृथक् नामानौ स्त । तत्रैकस्याभिधानम् 'चिन्तनम्' अन्यस्य च 'करणम्' अस्ति । द्वावप्येतौ यावदन्योन्यस्य यथावारक भार वोढु नैव समुद्यतौ, तावन्न कापि-प्रगते सम्भावना ।

केचन मनुष्याश्चिन्तयन्ति, किन्तु एतावदधिक चिन्तयन्ति, यत करण-समयो नावशिष्यात् । इत्थमेव केचन मनुष्या कुर्वन्ति, किन्तु ते एतावदधिक कुर्वन्ति, यतश्चिन्तनावकाश स्वयमवरुद्धश्वास स्यात् । सत्य मन्यस्व; द्वयमप्येतदपूर्णम्, नात्रैकस्मिन् कस्मिन्नपि प्रगतिकरणप्रवणता, अगतिरधोगतिर्वाऽवश्यमत स्यात् । त्वया चेत् प्रगतिरभिलष्यते, तर्हि चिन्तन करण च परस्पर समन्वेतव्यम् ।

त्वया विचारणीयम्, परन्तु नैतावद्, यत क्रियावरुद्धा स्यात् । त्वया करणीयम्, परन्तु नेत्थम्, यतो विचारसञ्चारोऽनवकाश स्यात् । विचारणीय करणीय च । करणीय विचारणीय च । उभयोरेवमेक क्रम सस्थापय, परन्तु द्वे चिन्तने द्वे करणे च मा परस्परमेकत्रीकुर्या ।

प्रगति के दो पैर

युवक ! तुम प्रगति के इच्छुक हो, यह सत्य है, पर क्या तुम नहीं जानते कि प्रगति के भी तुम्हारी ही तरह दो पैर होते हैं। तुम्हारे पैरों का व्यक्तिगत कोई नाम दिया हुआ नहीं होता, किन्तु प्रगति के दोनों पैरों का अपना अपना अलग नाम है। एक का नाम है 'सोचना' और दूसरे का 'करना'। दोनों पैर जब तक बारी-बारी से एक-दूसरे का भार संभालने को तैयार नहीं होते, तब तक प्रगति सर्वथा असम्भव है।

कुछ व्यक्ति सोचते हैं, पर बहुत अधिक सोचते हैं—इतना अधिक कि करने के लिए समय ही नहीं रह पाता। इसी प्रकार कुछ व्यक्ति करते हैं, पर बहुत अधिक करते हैं—इतना अधिक कि सोचने के लिए कोई अवकाश शेष ही नहीं रह जाता। तुम सच मानो, ये दोनों ही प्रकार के व्यक्ति अपूर्ण होते हैं। प्रगति इनमें से किसी को भी नहीं हो सकती, अगति या अधोगति अवश्य हो सकती है। तुम प्रगति के इच्छुक हो, तो तुम्हें चिन्तन और क्रिया में तादात्म्य बिठाना ही होगा। तुम सोचो, पर इतना नहीं कि करना रुका रहे। तुम करो, पर ऐसे नहीं कि उसके लिए सोचने का अवकाश ही न रहे। सोचो और करो, करो और सोचो। एक के बाद दूसरे का क्रम चालू रहने दो, पर दो सोचना तथा दो करने को इकट्ठा मत होने दो।

वास्तविकता

युवक ! कल्पनाया पक्षैः कियत्कालावधि उड्डयिष्यसे ? अन्तत कस्मिन्नपि एकस्मिन् वासरे वास्तविकताया धरातले तवावतारोऽवश्य-भावी। यद्यपि सुनिश्चितमेतद्, यद् वास्तविकता कल्पनावत् सौन्दर्य-शालिनी न भवति, परन्तु तद्वदेव एतदपि सुनिश्चितम्, यत् कल्पनावत् सा मायाविन्यपि न भवति।

यस्या कल्पनाया वस्तुरूपे परिणतिरशक्या सा त्वदर्थमवश्यमेव एक भय विद्यते, अतस्त्वया सावधानतया तत्सङ्गस्त्याज्य । नभसोऽनन्तविस्ता-रस्तव किमु लाभाय स्याद्, यदि क्वचनावतरितु चरणयुगलावस्थितियो-ग्याऽपि भूमिर्नोपलब्धा स्यात् ?

यदि त्वमुड्डयनमभिकाड्क्षसि तर्हि उड्डयस्व, परन्तु य धरातल-मुज्झसि, तत किमप्यधिक सुन्दर धरातल लभस्व। अन्ततस्तव लक्ष्य-मनन्त शून्य नास्ति, किन्तु किमप्यनन्त सद् एवास्ति ।

युवक ! नवकल्पना नववास्तविकताया परिणमयस्व, नवमाधार च निर्माहि। अद्य तव युवत्वस्य एतदेव परीक्षण भावि, यत् त्व कल्पनायामेव रममाणस्तिष्ठसि, अथवा ता वास्तविकताया परिवर्त्तयितुमपि सामर्थ्यं बिभर्षि। यदि त्वयि तत् सामर्थ्यं नास्ति, तर्हि स्वात्मान युवान मन्तु नास्ति ते कोऽप्यधिकार ।

वास्तविकता

युवक ! कल्पना की पांखों के सहारे कब तक उड़ते रहोगे ? अन्तत. एक-न-एक दिन तुम्हें वास्तविकता के धरातल पर उतरना ही होगा। यह निश्चित है कि वास्तविकता कल्पना जैसी सुन्दर नही होती, परन्तु यह भी निश्चित है कि वह कल्पना जैसी मायाविनी भी नही होती। जो कल्पना वास्तविकता के रूप मे परिणत नही हो सकती, वह तुम्हारे लिए सचमुच एक खतरा बन सकती है, तुम्हें सावधान होकर उससे बचना चाहिए। यदि तुम्हें कही उतरने के लिए दो पैर टिकाने जितनी भूमि भी न मिल पाए, तो आकाश का यह अनन्त विस्तार तुम्हारे किस काम आ सकता है ?

यदि तुम उडना ही चाहते हो तो उडो, परन्तु जिस धरातल को छोडते हो, उससे कही अधिक सुन्दर धरातल प्राप्त करो। आखिर तुम्हारा लक्ष्य अनन्त शून्य न होकर कोई अनन्त सत् ही होना चाहिए। नई कल्पना को नई वास्तविकता मे बदलो। नया आधार बनाओ। तुम्हारी युवकता की आज यह परीक्षा है कि तुम कल्पना मे ही रमे रह जाते हो या उसे वास्तविकता मे बदल देने की क्षमता रखते हो ? यदि तुम्हारे मे वह क्षमता नही है, तो तुम्हे स्वय को युवक समझने का कोई अधिकार नही।

मा रुन्त्स्व

युवक ! अनन्तशक्तीना स्रोतस्त्वदन्तरालात् प्रस्फुट्य इदमशेषमिला-तल प्रीणयितुमुद्यतते, परन्तु त्वदौदासीन्य-शिला-समुच्चय एव तन्मार्ग-मवरुध्य स्थित ।

अस्मिन् ससारे समुद्भूत कश्चिदपि महापुरुष साधु, कवि, दार्शनिक, व्यवसायी वा यत् किमपि ज्ञातु विधातु वा क्षमते, तन्निखिल त्वमपि ज्ञातुं विधातु वा क्षमसे। तेषु सर्वेषु नहि कश्चिदपि त्वदधिक अक्षरमात्रमपि ज्ञातु, सूत्रमात्रमपि वा अग्रे यातु अतिरिक्त सामर्थ्यं विभर्ति, तेषु सर्वेषु इव त्वय्यपि अनन्तसम्भावनाना भाण्डागार निहित विद्यते। आत्मन सम्भावनाना चरमसीमामुपलब्धु त्वया सदैव जागरूकमतिमता गतिमता च भाव्यम्, क्षणमात्रस्याऽपि औदासीन्य त्वामन्येभ्यो मन्थर विधाय पश्चाद्वर्तिषु क्षेप्स्यति ।

आत्मन औदासीन्य विरक्तिसज्ञया विज्ञपय्य मन प्रसादयितु पार्यते, परन्तु सत्यता त्वामाह्वानपूर्वक कथयति, यत् त्वमात्मवञ्चना कुरुषे ।

युवक ! प्रसुप्तास्ते शक्तयो जाग्रतु, बहिरायान्तु, स्रोतस स्वच्छजल-मिव च प्रवहन्तु, यद्येतत् त्वया साधयिष्यते, ततोऽह भविष्यवाणी कर्त्तु-मुत्सहे, यत् त्व पुरुषात् महापुरुषो भविष्यसि, ससारस्तदा तव चरणरजो-भिर्धन्यो भविष्यति। युवक ! आत्मन शक्तीनामिद पवित्र स्रोतो मा रुन्त्स्व।

रोको मत

युवक ! अनन्त शक्तियो का स्रोत तुम्हारे मे से प्रस्फुटित होकर इस धरातल को तृप्त कर देना चाहता है, परन्तु तुम्हारे औदासीन्य की चट्टान ही उसे रोके हुए है।

ससार मे पैदा हुआ कोई भी महापुरुष, सत, कवि, दार्शनिक या व्यवसायी जो कुछ जान सकता है, तथा कर सकता है, वह सब तुम भी जान या कर सकते हो। उन सब मे से किसी मे भी तुम्हारे से अधिक एक मात्रा भी जानने तथा एक सूत भी आगे बढने की अतिरिक्त क्षमता नही है। उन सब की ही तरह तुम्हारे मे भी अनन्त सभावनाओ का भडार निहित है। यदि तुम्हे अपनी सभावनाओ की चरम सीमा तक पहुचना है, तो सदैव जागरूक और गतिमय रहना चाहिए, क्षण भर का भी औदासीन्य तुम्हे औरो से पीछे ढकेल सकता है।

अपने इस औदासीन्य को तुम विरक्ति का नाम देकर अपना दिल बहला सकते हो, पर सचाई तुम्हारे सामने चुनौती देती हुई रहती है कि तुम आत्म-वचना कर रहे हो। युवक ! अपनी सोयी हुई शक्तियो को जागने दो, बाहर आने दो और स्रोत के स्वच्छ जल की तरह बहने दो। यदि तुम ऐसा कर पाओगे, तो मै भविष्यवाणी कर सकता हू कि तुम पुरुष से महापुरुष बन जाओगे और तब ससार तुम्हारे पद-रज से धन्य हो जाएगा। युवक ! अपनी शक्तियो के इस पवित्र स्रोत को रोको मत।

त्वामन्वेषयन्ति

युवक ! किमु त्वमवसरानन्वेषयसि ? मा विस्मार्षी , अवसरा स्वय त्वामन्वेषयन्ति । ते प्रतिदिन तव सम्मुखम्, उभयो पार्श्वयोर्वा भ्रमन्ति, परन्तु यावन्निराशाया अवसादस्य वा त्व मुखावगुण्ठन धारयसि, तावन्न ते कदाऽपि त्वा लक्षयितु क्षमन्ते । ते त्वा प्रवयस प्रकल्प्य परित्यजन्ति ।

त्व कथयसि, नहि मा कश्चिदवसरोऽनुगृह्णाति, परन्तु अवसरा वदन्ति, नहि कश्चित् कर्मठो युवाऽस्मान् सनाथयति। यद्यपि युस्मासु परस्पर सङ्गमार्थमपारमौत्सुक्यमवलोक्यते, परन्तु मिथ एतावानपरिचयश्चकास्ति, यत सर्वमौत्सुक्यमन्तर्गडुता याति ।

युवक ! मुखावगुण्ठनमपसार्य दूर क्षिप । एतौ निराशावमादौ वार्धक्यलक्षण विद्येते । त्वया तु आशान्वितेन उल्लासमयेन च भाव्यम् । तदानी त्वया प्राप्स्यते, यत् अवसरास्तव द्वारि समुपस्थितास्त्वामेव प्रतीक्षन्ते । ते तव कर्मठकरयुगले आत्मसर्वस्व समर्पयितुमुत्सहन्ते । अतस्त्वदर्थमवसराणा नहि काचिदल्पता विलोक्यते ।

तुम्हारी खोज मे

युवक ! क्या तुम अवसर की खोज मे लगे हो ? याद रखो, अवसर स्वय तुम्हारी खोज कर रहे हैं। वे प्रतिदिन तुम्हारे सामने या आसपास घूमा करते हैं, परन्तु जब तक तुम निराशा और अवसाद का नकाब लगाए रहते हो, तब तक वे तुम्हे पहचानने मे कभी सफल नही होते। वे तुम्हे वृद्ध समझकर छोड जाते हैं।

तुम कहते हो, मुझे अवसर ही नही मिल पा रहा है। किन्तु अवसर कहते हैं, हमे कोई कर्मठ युवक ही नही मिल पा रहा है। सचमुच तुम परस्पर मिलने के लिए अपार लालायित हो, पर इतने अपरिचित हो कि सारी लालसा व्यर्थ हो जाती है।

युवक ! नकाब उतार फेंको। निराशा और अवसाद वृद्धत्व के लक्षण हैं। तुम्हें तो आशा और उल्लासमय होना चाहिए। तब तुम पाओगे, अवसर तुम्हारे द्वार पर खडे तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहे है। वे तुम्हारे कर्मठ हाथो मे अपना सर्वस्व समर्पण कर देना चाहते हैं। अवसरो की तुम्हारे लिए कोई कमी नही है।

नव्यां महत्तां समुद्भावय

पूर्वजैर्यत् किमपि महत्त्वपूर्णमासादित तद्वलेनैव चेत् त्व जीवन व्यत्येतु चिन्तयसि, ततस्त्वदर्थं नहि कथमपि तच्छोभास्पदम् । पूर्वजैरर्जित गौरव तवाद्यतनजीवनाय तथैव अनुपयोगि, यथा च तेषा वेशभूषादिकम् । यदि त्वया एतद् विचार्यते, यत् पूर्वजाना पवित्रनाम्ना तव जीवनमानन्देन व्यत्येष्यति, ततस्त्व सर्वथा भ्रान्तोऽसि ।

कृत्स्न जगदद्यतन जीवन जीवति, अतस्तद् अद्यतनीमेव महत्तामपेक्षते, यदि त्व तया समन्वितो भविष्यसि, तर्हि नवयुगार्थमवश्यमेव तवानिवार्य-तयावश्यकता भविष्यति, अन्यथा व्यतीतयुग इव अनन्तातीतकालगर्भे विलीनीभूय अकिञ्चत्करता यास्यसि ।

युवक ! यदि त्व निजास्तित्वघोषणा ससारात् स्वीकारयितुमिच्छसि, ततो बहुकालपूर्वं विध्यापिताना श्मशानभूमिगत चिताना परम्परासु स्वात्मान मा स्थापय । निजधमनीषु धावतो नवशोणितस्य नवचेतनायै नव स्वर प्रदत्स्व, काञ्चिन् नव्या महत्ता च समुद्भावय ।

नई महत्ता को जन्म दो

युवक ! अपने पूर्वजो से तुमने जो कुछ महत्त्वपूर्ण पाया है, उसी के बल पर यदि तुम जीवन बिताने की बात सोचते हो, तो यह तुम्हारे लिए किसी भी प्रकार से शोभास्पद नहीं है। पूर्वजो के द्वारा अर्जित की गई महत्ता तुम्हारे आज के जीवन के लिए उसी प्रकार अनुपयोगी है, जिस प्रकार उनकी पोशाक। यदि तुम यह सोचते हो कि पूर्वजो के नाम से तुम्हारा जीवन आनन्द से निभ जाएगा, तो तुम निरे भ्रम मे हो।

सारा ससार आज का जीवन जीता है, अत उसे आज की महत्ता की ही आवश्यकता है। यदि तुम्हारे मे वह होगी, तो तुम अवश्य ही आज के युग के लिए अनिवार्य बन जाओगे, अन्यथा बीते युग की तरह अनन्त अतीत के गर्भ मे विलीन होकर रह जाओगे।

युवक ! यदि तुम अपने अस्तित्व की घोषणा को ससार मे स्वीकृत कराना चाहते हो, तो श्मशान-भूमि की बहुत पहले ही बुझ चुकी चिताओ की श्रेणी मे अपनी गणना कभी न होने दो। अपनी धमनियो मे दौडते हुए नये रक्त की नई चेतना को नया स्वर प्रदान करो और नई महत्ता को जन्म दो।

सूक्ष्मताया दिशि

पानीय यदा सूक्ष्मरूप धारयित्वा बाष्पीभवति, तदानी तदूर्ध्वगामि भवति, परन्तु तदेव यदा सौक्ष्म्यमपोह्य स्थूलतामुपैति, तदा पुनरपि बिन्दु-रूपेण नीचैरापतति। यद्यपि द्वे अपि पानीयस्यैव रूपे स्तस्तथाऽपि परस्पर तयो कियान् विभेद सजायते ? एवमेव विचारा अपि यदा सूक्ष्मता यान्ति, तदा दार्शनिकस्वरूपमाप्त्वा, तेऽत्यन्तमुन्नता भवन्ति, किन्तु त एव यदा ता स्थितिमपहाय केवल तात्कालिकीमावश्यकतामेव कषोपलतया स्वीकुर्वन्ति, तदा स्थूलीभूय पूर्वापेक्षया निम्नधरातलमयन्ते।

सलिले यदा दोषोत्पाद स्यात् तदा बाष्पीकरणद्वारा पुनरपि तद् विशुद्धीक्रियते, तद्वदेव विचारा अपि यदा सदोषा स्युस्तदा दर्शनप्रक्रियया एव ते विशुद्धिपदे नीयन्ते। यस्य विचारस्य मूले किमपि दर्शन न स्यात्, स विशुद्धताया अभावे तथैव कार्यकारी भवितु नार्हति, यथा बाष्पीकरणा-भावे सदोषमम्भ। प्रत्येक स्थूलत्व सूक्ष्मताया मूलमालम्ब्य एव स्थातुमर्हति, अतस्तन्नहि कश्चिदपेक्षितु क्षमते, परन्तु यथावस्थित तत्स्वरूपज्ञान तथापि नहि किमपि सरल कार्यम्। युवक! त्वयैतदसरलमप्यनुष्ठान सरल विधाय एव अग्रे चरणन्यासो विधातव्य। सूक्ष्मता विना सत्यप्राप्तेर्नान्य कश्चित् पन्था।

सूक्ष्मता की ओर

पानी जब सूक्ष्म रूप धारण करके वाष्प बनता है, तब वह ऊपर उठता है, किन्तु वही जब सूक्ष्मता को छोड़कर स्थूलता मे आता है, तब फिर से बिन्दु बनकर नीचे आ जाता है। पानी के इन दोनो रूपो मे परस्पर कितना अन्तर हो जाता है ?

इसी प्रकार विचार भी जब सूक्ष्म बनते हैं, तब वे दार्शनिक स्वरूप पाकर बहुत ऊंचे हो जाते हैं, किन्तु वे ही जब उस स्थिति को छोड़कर केवल तात्कालिक आवश्यकता को ही अपना कपोपल बना लेते हैं, तब स्थूल होकर अपेक्षाकृत निम्न धरातल पर आ जाते हैं।

पानी मे जब दोप उत्पन्न हो जाते हैं, तब वाष्पीकरण के द्वारा उसे पुन विशुद्ध बनाया जाता है, ठीक उसी प्रकार विचार भी जब सदोप हो जाते हैं, तब दर्शन की प्रक्रिया से ही उन्हे विशुद्ध बनाया जाता है। जिस विचार के मूल मे कोई दर्शन नही होता, वह विशुद्धता के अभाव मे वैसे ही कार्यकर नही हो सकता, जैसे कि वाष्पीकरण के अभाव मे सदोप पानी।

हर स्थूलता सूक्ष्मता की नीव पर ही खडी रह सकती है, अत उसके अस्तित्व मे आख तो कोई भी नही मूद सकता, परन्तु फिर भी उसे यथावस्थित पहचान लेना कोई सरल काम नही है। तुम्हे इस असरल को भी सरल बनाकर आगे चलना होगा। सूक्ष्मता तक पहुचे बिना सत्य को पाने का कोई दूसरा मार्ग नही है।

कस्य परिष्कारः ?

पङ्के कियदप्यस्वच्छताया दोषमारोपय, परन्तु पङ्कजस्य नयनाभिराम आकार, मनोमुग्धकारी च सुरभिस्त्वामवश्य प्रभावयिष्यति । किमु कदाचिदपि त्वयेद तत्त्व विमृष्टम्, यत् तस्यैतासा विशेषतानामुद्गम कुतश्चकास्ति ? य पङ्क घृणादृष्ट्या वीक्षसे, तस्मादेव एता सर्वा विशेषता समुद्भूता ।

पङ्कज पङ्कादेव चेच्चक्षुस्तोषपोषकमाकारम्, घ्राणतर्पण गन्धम् अनन्यामनाविलताम्, सुखदकोमलताद्यशेषगुणाश्च अवाप्तु क्षमते, तर्हि त्वमेव तत्सर्व कथमिव नाप्तुमलम् ? कथमिव च ततो मालिन्य-दौर्गन्ध्या-दिदोपशतमुपलभसे ? अत्यन्त गूढोऽय प्रश्न । नास्य प्रतिवच प्राप्तिरपि सुलभा । तव योग्यतायै सुतरामाह्वानीभूतोऽय विद्यते ।

किञ्चित् समीक्षस्व, क्वचित् तव ग्राहकशक्तेरेवाय दोषो न स्यात् ? मालिन्य दुर्गन्धश्चेत्यादयो दोषा पङ्के सन्ति, त्वयि वेति केन निर्णेतु शक्यम् ? त्वया यत् पङ्काद् गृहीत तत् त्वयैवेत्थ परिणामितम्, यदा च पङ्कजेना-न्यथा । त्वयोच्यते, पङ्क परिष्कार्य, परन्तु मयोच्यते, तव पारिणामिकी शक्तिरेव परिष्कार्यास्तीति ।

किसका सुधार ?

पक को तुम कितना भी अस्वच्छ क्यो न मानते रहो, परतु पकज की नयनाभिराम आकृति और मनोहारिणी सुगध से प्रभावित हुए विना नही रह सकते। क्या तुमने कभी यह सोचा कि उसकी इन विशेपताओ का उद्गम कहा से है ? वस्तुत जिस पक को तुम घृणा की दृष्टि से देखते हो, उसी मे से ये सारी विशेपताए उद्भूत हुई है।

पकज को यदि पक मे ही वह उत्तम आकार, तृप्तिकारक सुगध, अद्वितीय स्वच्छता और सुखद कोमलता आदि अशेप गुण मिल सकते है, तो तुम्हे वे मव क्यो नहीं मिल सकते ? क्यो तुम उससे मालिन्य और दुर्गन्धता आदि दोप ही पाते हो ? यद्यपि यह एक अत्यन्त गूढ़ प्रश्न है और इसका उत्तर पा लेना महज नही है, फिर भी यह तुम्हारी योग्यता के लिए एक चुनौती है।

जरा सोचो तो, कही इसमे तुम्हारी ग्राहक-शक्ति का ही दोप तो नही है ? दुर्गन्ध आदि बुराइया पक मे हैं या तुम्हारे मे, इसका निर्णय कौन दे सकता है ? तुमने जो पक से ग्रहण किया, उसे तुमने ही इस रूप मे परिणत कर लिया है, जव कि पकज ने दूसरे रूप मे। तुम पक को सुधारने की बात कहते हो, पर मैं कहता हू कि तुम्हारी पारिणामिकी शक्ति मे ही सुधार की आवश्यकता है।

एक एव मार्गः

प्रत्येक कार्यं तवान्तरिकभावनाया प्रतिबिम्ब भवति, अतएव वस्तुवृत्त्या तव परिचयस्त्वया स्वय नहि, किन्तु तव कार्यैरेव दीयते। यदित्वमभिलषसि, यत् ससारस्त्वामेक श्रेष्ठ पुरुष मन्वीत, तर्हि त्वया श्रेष्ठान्येव कार्याणि निष्पादनीयानीति नितान्तमावश्यकम् । दुष्ठुकार्यैर्न कदापि कश्चिदुत्तमतामधि कर्तुमर्हति । श्रेष्ठकार्यनिष्पत्तिरपि तदैव भवितु शक्या , यदा मन सम्यग्विचारैर्व्याप्त स्यात् ।

विशुद्धहृदयेन अनभिनिविष्टमस्तिष्केन च सम्यक्ताया सदैव स्वागत कुरु। यत्र क्वचिदल्पीयस्यपि सम्यक्ता प्राप्या स्यात्, ततस्तामपि सगृहाण, वलात् प्रविष्टामसम्यक्ता च समृज्य व्यपाकुरु।

किमत्र सम्यक्, किञ्चाऽसम्यक् इति सर्वमुन्मीलितनयनेनैव त्वया परीक्षणीयम्। कस्याञ्चिद् व्यामोहावस्थायामत्र व्यत्ययो न स्यादिति शश्वद् ध्यातव्यम् । सम्यक्तास्वीकारतोऽपि पूर्वमसम्यक्ता-निरास· परमावश्यक , अन्यथा सम्यक्ताया रक्षा सम्भवापि न स्यात्।

युवक ! वहुकालेन सुप्तोऽसि , परमधुना जागरणकाल समुपस्थितोऽस्ति , अतो जागृहि, यदि जागरितस्तर्हि उत्तिष्ठ , उत्तिस्तर्हि प्रतिष्ठस्व, प्रस्थितस्तर्हि तावत् क्वचिदपि मा स्था. यावल्लक्ष्यसिद्धिर्न स्यात्। श्रेष्ठताया अयमेक एव मार्गोऽस्ति।

एकमात्र मार्ग

प्रत्येक कार्य तुम्हारी आन्तरिक भावना का प्रतिविंब होता है, इसलिए तुम्हारा वास्तविक परिचय तुम स्वय नही, किन्तु तुम्हारे कार्य ही दिया करते हैं। यदि तुम यह चाहते हो कि ससार तुम्हे अच्छा व्यक्ति माने, तो यह आवश्यक है कि तुम अच्छे कार्य करो। बुरे कार्य करके कभी कोई अच्छा नही बन सकता। अच्छे कार्य भी तुम तभी कर सकोगे, जब कि अच्छे विचारो से तुम्हारा मन भरा होगा।

अपने खुले हृदय और खुले मस्तिष्क मे अच्छाई का सदैव स्वागत करो। जहा कही थोडी-सी भी अच्छाई मिल सके, उसे बटोरते रहो और साथ ही बलात् घुस आयी बुराई को बुहारकर साफ करते रहो।

यहा क्या अच्छा है और क्या बुरा, इसकी परीक्षा आखें खोलकर ही करना। ऐसा न हो कि किसी व्यामोह मे पडकर तुम उसका व्यत्यय कर बैठो। अच्छाई को अपनाने से पूर्व बुराई पर विजय पा लेना आवश्यक है, अन्यथा सभव है कि तुम अच्छाई की रक्षा ही न कर सको।

युवक ! तुम बहुत दिनो तक सोये रहे, किन्तु अब जागने का समय आ चुका है, अत जागो। यदि जाग चुके हो, तो उठो। उठ खडे हो, तो चलो। और चल पडे हो, तो तब तक कहीं मत ठहरो, जब तक कि लक्ष्य सिद्ध नही कर लो। अच्छा बनने का एकमात्र यही मार्ग है।

पवित्रतां स्थापय

तव चरणौ यस्या दिशि प्रयास्यत , भाविसमाजस्य स एव सुनिर्णीतोऽध्वा भविष्यति। भाविसमाजस्य आद्यपुरुषत्वात् त्वयाऽत्यन्तसावधानतापूर्वकमेव प्रत्येक चरणोऽग्रे निधातव्य । यद्येकोपि ते पदविन्यासो विपरीतदिशि भविष्यति , तत स निखिलमपि समाज पतनगर्त्ते नेतु कारणता यास्यति।

एतन्मा भावय , यन्मादृशा साधारण-जनाना त्रुटि समग्र समाज कथ प्रभावयिष्यतीति ? त्व स्वात्मान कियन्तमपि हीन मन्यस्व , परन्तु तव प्रत्येका क्रिया समाजसरसि लोष्टुता याति। कासारे निक्षिप्तो लोष्टुर्यथा तत्रैकमीदृश वृत्तमुद्भावयति , यदग्रे क्रमशोऽन्यान्यप्यनेकानि वृत्तानि समुद्भावयति , तद्वदेव तव क्रियापि समाजे एकामीदृशी लहरीमुद्भावयति , या अन्य-लहरी-समुद्भव-कारणीभूय समाजे एकामवाञ्छनीया क्षोभपरम्परामुद्भावयति। सा लहरी कदाचिदियती सूक्ष्मा भवति, या चिह्नितुमपि नैव शक्या, किन्तु समाजस्य शीघ्रग्राहिहृदयपटले तदुद्भावित सूक्ष्मतमस्पन्दनमपि अङ्कनमवाप्नोति, काञ्चित् स्व-प्रतिक्रियामप्यवश्यमेव विसृजति।

युवक ! त्वयात्मन प्रत्येकक्रिया सूक्ष्मेक्षिकया निरीक्षणीया , यत् तत्र कश्चिदज्ञातदोषस्तु पुष्टो न स्यात् ? त्व सङ्कल्पपूर्वक मन , वाणी क्रिया च पावनीकृत्य गन्तुमभ्यस्य। समाजस्त्वत्तो यदाकाङ्क्षति , तत् पूरयितु योग्यस्त्वमनेनैव मार्गेण भविष्यसि। मा विस्मर , पवित्रतावृद्धयर्थं न कदाप्यपवित्रता कार्यक्षमा भवितु शक्या, अतो जीवनस्य प्रत्येकप्रवृत्तौ पवित्रता स्थापय।

पवित्रता को स्थान दो

तुम्हारे पैर जिस ओर बढेंगे, भावी समाज का वही सुनिर्णीत मार्ग होगा। भावी समाज के आद्य पुरुष के रूप मे तुम्हे बडी सावधानीपूर्वक एक-एक कदम आगे बढाना चाहिए। यदि तुम्हारा एक कदम भी गलत दिशा की ओर बढता है, तो वह सारे समाज को पतन की ओर ले जाने का कारण बन सकता है। यह मत सोचो कि तुम्हारे जैसे व्यक्तियो की साधारण-सी गलती से सारे समाज पर क्या असर आ सकता है? तुम चाहे अपने आप को कितना ही नगण्य क्यो न समझो, पर तुम्हारी प्रत्येक क्रिया समाज के तालाब मे एक ककर का काम करती है। जिस प्रकार तालाब मे फेंका गया हर ककर उसमे एक ऐसा वृत्त पैदा करता है, जो कि आगे-से-आगे दूसरे वृत्तो को जन्म देता जाता है, उसी प्रकार तुम्हारी प्रत्येक क्रिया समाज मे एक ऐसी लहर पैदा करती है, जो कि दूसरी लहरो को उत्पन्न करती हुई समाज मे एक अवाछनीय हलचल पैदा कर देती है। वह लहर इतनी सूक्ष्म होती है कि कभी-कभी तो पहचान में भी नही आती, परन्तु समाज के शीघ्र-ग्राही हृदय-पटल पर उससे उत्पन्न सूक्ष्मतम स्पन्दन भी अकित हो जाते हैं और अपनी कुछ-न-कुछ प्रतिक्रिया अवश्य छोड जाते है।

युवक! तुम अपनी प्रत्येक क्रिया की छानबीन करके देखो कि उसमे कही कोई अज्ञात दोष तो नही पनप रहा है? तुम सकल्पपूर्वक अपने मन को, अपनी वाणी को और अपनी समस्त कायिक क्रियाओ को पवित्र रखकर चलने का अभ्यास करो। समाज तुम से जो आकाक्षा रखता है, उसकी पूर्ति करने के योग्य तुम इसी मार्ग से बन सकते हो। याद रखो, अपवित्रता से पवित्रता की वृद्धि कभी नही की जा सकती, अत जीवन की हर प्रवृत्ति मे पवित्रता को स्थान दो।

अमरतां यास्यसि

युवक ! यत् किमपि चिकीर्षसि तत् सर्वं स्वात्मानमग्रिमपङ्क्तौ स्थापयित्वा कुरु। अनुकरणशीलानामत्र ससारे बाहुल्य विद्यते, परन्तु अग्रणीभूय कार्यकरण न सर्वेषा वशवदम्। बालका अपूर्णा अपरिपक्वाश्च भवन्ति, न ते पूर्णत कार्यविधिमप्यधिगच्छन्ति, स्थविरा जराजर्जरीभूय स्वास्तित्वचिन्ताया निग्मना, तेषा शोणित शीतीभूतम्, अतस्तेषा कार्यसामर्थ्यं नामशेषतामिव प्राप्तम्। एवमेकस्त्वमेव केवल सर्वेषा बालाना वृद्धाना चाशाऽसि।

त्वयेदानी कर्तव्याह्वान श्रुत्वा तत्र स्वात्मनो बलिदानाय सन्नद्धेन भवितव्यम् बलिपथेस्मिन् बाला वृद्धाश्चापि त्वया सह गमिष्यन्ति, परन्तु अग्रेसरीभूय त्वयैव गन्तव्यम्, अन्ये तु सर्वे त्वामनुयान्त सहयोगिनो भविष्यन्ति।

युवक ! त्व सर्वेषामाशाना प्रतीकोऽसि, अतो विशेषसावधानतया स्वमार्गो निर्णतव्य। नात्र कश्चिद् सन्देह, यत् त्व यदाऽग्रे सचरिष्यसि तदा नैकाकी भविष्यसि। सहयोगिना सङ्ख्यया सम्भवतस्त्व स्वयमाश्चर्याभिभूतता यास्यसि। भाविना बलिपथयायिना हिताय यदि त्व मार्गे कञ्चन नवीन प्रकाशस्तम्भ स्थापयितुमर्हेस्तर्हि ससारेऽस्मिन्नमरता यास्यसि।

अमर हो जाओगे

युवक ! जो कुछ करना चाहते हो, वह स्वय आगे होकर करो । पीछे होकर करने वाले तो ससार मे बहुत हैं, पर आगे होकर करना सबके वश की बात नही । बालक अपूर्ण और अपरिपक्व होते हैं । वे कार्य करने की पूरी विधि नही जानते । बूढे जर्जर होकर अपने अस्तित्व की चिन्ता मे निमग्न रहते हैं । उनका रक्त ठडा हो चुका होता है, अत वे कार्य-सामर्थ्य खो चुके होते हैं । इस तरह केवल तुम ही सब बालको और बूढो की एकमात्र आशा हो । तुम्हे अब कर्तव्य की पुकार सुनकर उस पर बलि होने के लिए सन्नद्ध हो जाना है । उस पथ पर बालक और बूढे भी तुम्हारे साथ होगे, परन्तु आगे तुम्हे ही चलना होगा, अन्य सब तो पीछे चलकर तुम्हे सहयोग देंगे ।

युवक ! तुम सबकी आशाओ के प्रतीक हो, अत विशेष सावधानी से तुम्हें अपना पथ निर्णीत करना है । इसमे तनिक भी सन्देह नही है कि जब तुम आगे बढोगे, तब अकेले नही होओगे । तुम्हारा साथ देनेवाले इतने होंगे कि उनकी सख्या से स्वय तुम्हे आश्चर्य हुए बिना नही रहेगा । बलि-पथ के भावी पथिको के लिए यदि तुम मार्ग पर कोई नया प्रकाश-स्तम्भ स्थापित कर सको, तो तुम अमर हो जाओगे ।

साहसं न कदापि पराजयते

साहसस्थापराजेयशक्ते स्वामित्वमासाद्यापि यदा-तदा कथमिव त्व निराशामाश्रयसे ? वस्तुत सा तु तव सम्मुखमीक्षितुमपि न क्षमते, परन्तु तवान्त करणे प्रच्छन्नीभूय स्थित कश्चिद् विकार एवावसरमवाप्य ता तवान्तिकमानयति, त्वमपि च कस्मिश्चिदसावधानताया क्षणे तामुरी-कर्तुमुद्यतो भवसि। तस्मिन् समये त्वयेद विस्मर्यते, यत् तवान्तिकमेक-साहसनामक एतादृशो महामन्त्रश्चकास्ति, यस्य प्रयोग कदापि निष्फलता न याति।

युवक ! त्व साहसस्य देवोसि। निराशानिशाचर्यै आश्रय दत्त्वा माऽऽत्मनो देवत्व कलङ्कय। यस्य साहसस्य बलेन त्वयाऽन्धकारमपाकृत्य प्रकाश समुपलब्ध गर्वोन्नतपर्वता पादैराक्रान्ता, अगाधसागरस्य तलमन्विष्य मुक्ता समासादिता, अशेष च शेषताया परिणामितम्, तदेव साहस त्वा निराशातोपि समुद्धर्त्तुमर्हति।

युवक ! सावधानतया साहसमेवावलम्बस्व। मा विस्मार्षी, साहस न कदापि पराजयते, नापक्रामति, विजयान्न्यून न तत् कदापि स्वीकरोति। साहसमेव तव युवत्वस्य साक्ष्यम्, तद् विमुच्य त्वमन्यत् किमपि भवितु शक्नोषि, किन्तु तरुणस्तु न कथमपि भवितु शक्त।

साहस कभी हारता नही

साहस की अपराजेय शक्ति के स्वामी होकर भी तुम कभी-कभी निराश क्यो हो जाते हो ? निराशा तो तुम्हारे सामने देखने के लिए सोच भी नही सकती, किन्तु तुम्हारे अन्तस्तल मे छिपा कोई विकार ही अवसर पाकर उसे तुम्हारे तक ले आता है और तुम भी किसी असावधानी के क्षण मे उसे स्वीकार करने को उद्यत हो जाते हो। उस समय तुम भूल जाते हो कि तुम्हारे पास साहस का वह महा-मत्र है, जिसका प्रयोग कभी निष्फल नही जाता।

युवक ! तुम साहस के देवता हो। निराशा-राक्षसी को आश्रय देकर तुम अपने देवत्व को कलकित मत होने दो। जिस साहस के बल पर तुमने अधकार को चीरकर प्रकाश पाया है, गर्वोन्नत पर्वतो को पद-दलित किया है, अगाध समुद्र के तल तक पैठकर मुक्ता पाए हैं और अशेष को शेष मे परिणत कर दिया है, वही साहस तुम्हे निराशा से भी उबार सकता है।

युवक ! सावधान होकर साहस से काम लो। याद रखो, साहस कभी हारता नही, पीछे भी नही हटता, विजय से न्यून को वह कभी स्वीकार ही नही करता। साहस ही तुम्हारी युवकता का साक्षी है। उसे छोडकर तुम और कुछ भी हो सकते हो, पर युवक तो हरगिज नही हो सकते।

आत्म-जयः

युवक ! एते पर्जन्या , ये द्राव द्राव निखिला मेदिनीमार्द्रयन्ति, नहि तव शक्तेर्बहिर्भूता । निजनिजालोकेन तव मन प्रभावयन्तश्चैते सूर्यसुधाशु-नक्षत्रतारादयोपि नहि त्वद्गतिसीमोल्लङ्घनक्षमा । एता अम्भ -सम्भृता नद्य, एते आकाशस्पर्धिन शिखरिण, एते वेलाकुलाश्चाम्भोधयस्तु बहुकालपूर्वमेव तव दुर्दम-वर्चस्व-चरण-शरणार्थिनोऽजनिपत ।

दृढसङ्कल्पस्य कर्मठतायाश्च शक्ति सम्मिल्य त्वदर्थमगम्यमपि गम्यम्, असम्भवमपि च सम्भवमकृत । प्रकृत्या सह युद्ध्वा प्रतिस्थान त्वया जयो लब्ध । साम्प्रत प्रकृतिस्तव चरणसेविका सम्पन्ना, परन्तु युवक ! त्वामहमेक प्रश्न पिपृच्छिषामि, किं त्वया स्वात्मा विजित ? यदि नहि, ततो विदूरस्थाना विजये नास्ति कश्चिल्लाभ । पूर्वमात्मजयी भव, तदैव त्वमन्यान् जेतुमधिकारी भविष्यसि । परन्तु तदानी सम्भवतस्तदधिकारस्य काचिदावश्यकतापि नावशेक्ष्यति ।

स्वय पर विजय

युवक ! ये बादल जो कि पिघल-पिघलकर सारी पृथ्वी को भिगो रहे हैं, तुम्हारी पहुच से परे नही हैं। यह सूरज और चाद, ये नक्षत्र और तारे, जोकि अपनी-अपनी चमक से तुम्हारे मन को प्रभावित करते रहते हैं, तुम्हारी गति की सीमा से बाहर नही हैं। ये उफनती हुई नदिया, ये आकाश से स्पर्धा करते हुए पर्वत और ये वेलाकुल समुद्र तो कभी से तुम्हारे दुर्दम वर्चस्व के चरणो में विनत हो चुके हैं।

दृढ सकल्प और कर्मठता की शक्ति ने मिलकर तुम्हारे लिए अगम्य को भी गम्य और असम्भव को भी सम्भव बना दिया है। हर स्थान पर तुमने प्रकृति पर विजय पायी है। तुम प्रकृति के स्वामी बन चुके हो। परन्तु युवक ! मैं तुमसे एक प्रश्न पूछना चाहता हू, क्या तुमने स्वय अपने आप पर विजय पा ली है ? यदि नही, तो दूर-दूर की विजयो से कोई लाभ नही। पहले स्वय पर विजय पाओ, तभी तुम दूसरो पर विजय पाने के अधिकारी हो सकते हो। परन्तु तब सम्भवत तुम्हे उस अधिकार की कोई आवश्यकता भी नही रह जाएगी।

भिक्षुक !

भिक्षुक ! राजमार्गमध्युष्य किं सीव दौस्थ्य प्रदर्शयसि ? ग्रथिल ! चवैतेषा पुसा पार्श्वे तच्चक्षुर्येन तव मनोगता व्यथा विलोकेरन् ? सरलाशय ! किं नैव स्मरसि यत् श्व एव य पिपासित त्वा पानीयमपाय-यित्वैव द्वारप्रदेशाद् हठाद् न्यवीवरत्, स किलैतेषु एव कश्चिदेक आसीत् तथैव यो गृहभित्तिमालम्ब्य विश्रान्तु स्थित त्वा रथ्यातोप्यपा-सीसरत्, यश्च क्षुत्क्षामकुक्षि याञ्चापरमपि त्वामवगणय्य श्वान पर्युपितान्नैरपिप्रीणत्, सोपि चास्यैव समाजस्य एक सदस्य आसीत्। विस्मरणशील ! प्रत्यवसरमीदृशीना घटनाना प्रत्यावर्त्तन निर्बाध जायते, किमिति नैव वेत्थ ?

येन मानवसङ्घेन त्वमीदृशी निम्नामवस्था नीत , तस्यैव सदस्याना पुरत स्वदैन्य प्रकाशयतस्तवात्मा किमु नैव त्रपते ? एतेषा ये निरनुकम्पा पाणयस्तव पतनगर्त्तमतिगभीरमखानिषु , किमु त्व तेभ्य एव वरदानमभिलषसि ?

विस्मृतात्मन् ! जागृहि, पतिता स्वावस्थामात्मनैव द्रुतमुन्नयस्व, मेतरसाहाय्यमैषी । उन्नतमन्या परेऽमी मनुष्या केवल त्वामवनेष्यन्ति, नहि कश्चिदेतेषु काणेनापि चक्षुषा तवोन्नतिं दिदृक्षते। किं तत. परापेक्षत्वेन मुधैव स्वस्य हीनतामभिव्यनक्षि ?

भिक्षुक

भिक्षुक ! राजमार्ग पर बैठकर तुम क्यो अपना दैन्य बिखेर रहे हो ? पागल ! उन मनुष्यो के पास वह आख कहा है, जो तुम्हारी मनोगत व्यथा को देख सके ? सरलाशय ! क्या भूल गए कि कल ही जब तुम पानी पीने की इच्छा से आए थे, तब बिना पानी पिलाए ही अपने घर के दरवाजे से जिसने तुम्हें बलपूर्वक निकाल दिया था, वह इन्ही मनुष्यो मे से कोई एक था। जब तुम किसी घर की भीत का सहारा लेकर विश्राम कर रहे थे, तो तुम्हें गली से भी निकल जाने को जिसने विवश कर दिया था, वह भी इन्ही मे से एक था, और जब तुम भूख से तडपते हुए याचना कर रहे थे, तब तुम्हारी ओर कुछ भी ध्यान न देकर जिसने सारा बासी अन्न कुत्ते को डाल दिया था, वह भी तो इन्ही मे से ही था। विस्मरणशील ! हर बार ऐसी ही घटनाए निर्बाध रूप से दुहराई जाती रही हैं, क्या तुम यह नही जानते ?

जिस मानव समुदाय ने तुम्हे ऐसी निम्न अवस्था दी है, उसी के सदस्यो के सम्मुख अपनी दीनता गाते हुए क्या तुम्हे लज्जा नही आती ? उनके जिन निर्दय हाथो ने तुम्हारे पतन के गढे को और अधिक गहरा कर दिया है, क्या तुम उन्ही से वरदान की आशा करते हो ?

विस्मृतात्मन् ! जागो, गिरी हुई अपनी अवस्था को स्वय तुम ही उन्नत करो, दूसरो की सहायता का मुह मत ताको। अपने को अधिक उन्नत माननेवाले ये मनुष्य तुम्हें केवल गिराएगे ही। इनमे से कोई फूटी आखो भी तुम्हारी उन्नति नही देखना चाहते। फिर भी तुम क्यो इस परापेक्षवृत्ति से निरर्थक ही अपने आपकी हीनता व्यक्त कर रहे हो ?

निर्बलत्वं

प्रदीप –समीरण! त्वमिह मम बृहद्भ्रातुस्तनूनपात सनातन सवया असि। यदा यदा मातृगीन स दिग्विजयाय प्रास्थित, तदा तदा स्वय त्वमेव त सबला प्रेरणा ददद् विजयिन। महाबल! अहमप्यन्ततस्तरयैव कनीयान् समानोदर्योऽस्मि, परन्तु न जाने त्व मा प्रति कथमियान् निष्कारणोऽजनिष्ठा यत प्रतिसमय मया सह तिरस्कारपूर्वं व्यवहरन्नेवानन्दसि। नैतावदेव, किन्तु कदाचित् तु ममास्तित्वसगोपनेपि बद्धपरिकरो भवसि।

यद्यप्यह कृशो निर्बलश्चास्मि, तथापि जिजीविषाधिकारस्तु ममापि त्वद्वदेव सबलश्चकास्ति। ऊर्जस्वलेन त्वयाहमनुकम्प्योऽस्मि, परन्तु खिद्येऽह यत् त्व सहायतामविधाय मा निर्वापयितुमेव प्राय प्रयतसे।

समीरण –स्यामह तनूनप, एव शृण्वत् सहाय। त्व चेन्मम सहयोगमभिलषसि, तत पूर्वं निजदौर्बल्य दूरमपसारय। एवमनुष्ठिते सति त्व स्वतमनुभविष्यसि यत् त्वया सार्धमपि मैत्रीव्यवहार एवास्ति। निर्बलाना सहायकस्तु नास्मिन् ससारे कश्चिदपि बुभूषति, अतो हि नात्र कश्चिन् मम दोष।

निर्बल

प्रदीप—समीरण ! तुम मेरे बडे भाई वैश्वानर के सदा से ही मित्र रहे हो। वह बडा रण-कुशल है। उसने जब-जब दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया है, तब-तब स्वय तुमने प्रबल प्रेरणा देते हुए उसका उत्साह बढाया है और विजयी बनाया है। महाबल ! मैं भी तो अन्तत उसका ही छोटा भाई हू, किन्तु न जाने तुम मेरे प्रति इतने निष्करुण क्यो हो गये हो कि हर समय मुझे फटकार बतलाने में ही तुम्हें आनन्द मिलता है। इतना ही नही, कभी-कभी तो मेरा अस्तित्व मिटा देने पर भी तुल जाते हो।

यद्यपि मैं कृश और निर्बल हू, पर जीवित रहने की अभिलाषा तो रखता ही हू। तुम बलवान् हो, अत तुम्हें मेरी सहायता करनी चाहिए। किन्तु खेद है कि तुम सहायता तो करते ही नही, मुझे बुझा अवश्य देते हो।

समीरण—मैं तो सदा बलवान् का ही सहायक होता हू। तुम्हे मेरा सहयोग चाहिए, तो पहले अपनी निर्बलता को दूर हटा दो। फिर तुम स्वय अनुभव करोगे कि मैं तुम्हारे साथ भी मित्रता का ही व्यवहार करता हू। निर्बल का सहायक मैं तो क्या, दुनिया मे कोई भी नही होता।

निजमाननमवलोकय

प्रदीप—तमस्विनि ! यावदहं जागरितस्तावन्नहि कदाचिदपि त्वामेता-दृशमवसरं दास्यामि, यतस्त्वमत्र स्वतम-प्रसारे प्राप्तसाफल्या भवेः। जगतः श्रेयसे कृत्स्नमपि जीवितमुदस्राक्षमहम्, नात्र विश्वहितविमुखा त्वं स्वल्पमप्यनुगृह्यसे। पापीयसि ! दूरमपसर, मा मम सम्मुखं स्थाः।

तमस्विनी—स्नेहप्रिय ! स्निग्धो भव, किञ्चिद् दयस्व मयि दुर्विधायाम्। स्वल्पीयोपि स्थानं चेल्लभेय ततस्तस्मिन्नेव क्षणं विश्रम्य पुनः प्रतिष्ठेय। प्रदीप ! एकत्रापि क्वचिदपकृतं तत्कालं तस्य। सकलां परोपकारितां दूषयतीति नाविदितं तत्त्वं तव ?

प्रदीप—हन्त ! नहि मन्यसे ? मा वोचः स्वल्पमपि। तूष्णीं स्वपथमवलम्बस्व। कुपितोहमन्यथा त्वां नामशेषतां नेष्यामि।

तमस्विनी—यो यावान् तुच्छः स्यात् स तावानेवाधिको दृप्तोपि स्यादिति त्वया सम्यक् साधितम्। केन सामर्थ्येन त्वमतो मामपसार-यितुमुद्युङ्क्षे ? पूर्वं तन्निजमाननमवलोकय, यत् सदैव कालिमानमेव केवलमुद्गिरति। त्वया परोपकाराय केवलमुपदिष्टमेव, किन्तु नहि तद्विषये किमप्यनुष्ठितम्। यः स्वयमात्मसम्भवस्यापि कालिम्नोऽवरोधाय शक्तिशून्यतां दधीत, स किं परोपकार-प्रवणतामाधातुमर्हेत् ? जगदिदं त्वत्तः परमार्थतां कथमाशासीत, यदा च त्वमात्मार्थमप्यनीनशः।

अपना मुख

प्रदीप—तमस्विनी ! जब तक मैं जागता रहूगा, तब तक तुम्हे ऐसा अवसर कभी भी नही दूगा कि जिससे तुम अपना अन्धकार फैला सको। मैंने जगत् के श्रेय के लिए अपना समस्त जीवन अर्पित कर दिया है, इसलिए तुम्हारे पर मैं किंचित् भी अनुग्रह नही कर सकता, क्योकि तुम विश्व-हित के प्रतिकूल चलती हो।

तमस्विनी—स्नेह-प्रिय ! जरा नरम बनो। मुझ अभागिनी पर कुछ तो दया करो। यदि थोडा-सा भी स्थान दे दो, तो उसी मे कुछ देर विश्राम करके मैं फिर आगे चल दूगी। प्रदीप ! किसी एक व्यक्ति का भी यदि तिरस्कार किया जाता है, तो तत्काल उसकी सारी परोपकारिता ही दूषित हो जाती है, यह बात तुम्हारे से छिपी हुई नही है।

प्रदीप—तुम नही मानोगी ? यहा बिलकुल मत बोलो और चुपचाप अपना रास्ता लो। यदि मैं कुपित हो गया, तो तुम्हारा नाम-धाम ही मिटा डालूगा।

तमस्विनी—जो जितना छोटा होता है, उसके उतना ही अधिक अहकार होता है, इस बात को तुमने बिलकुल सत्य सिद्ध कर दिया है। कौन-से बल-बूते पर तुम मुझे यहा से हटाने का प्रयत्न कर रहे हो ? पहले अपना मुख तो देखो, जो कि सदैव कालिमा ही उगलता रहता है। तुमने केवल परोपकार की बातें ही बघारी हैं, किन्तु किया कुछ भी नही है। वह व्यक्ति दूसरो का क्या उपकार कर सकता है, जो अपने से उत्पन्न होनेवाली कालिमा को भी नही रोक सकता। जगत् तुम्हारे से परमार्थ की तो आशा ही क्या कर सकता है, जबकि तुमने आत्मार्थ को भी नष्ट कर दिया है।

प्रेमिपाशः

प्रेक्षक —प्रदीप ! तव हृदय स्नेहनिचित विद्यते, तत कथ सरलान् शलभान् भस्मीकरोषि ? किमेतस्मिन् कार्ये त्व ह्रिणीया नैव प्राप्नुया ?

प्रदीप —किमिद मन्दाक्षत्वम् ? वस्तुवृत्त्या जडाना लक्षणमेतत् । स्वार्थसिद्धये परेपामाहुतौ को नाम दोप ? 'परोपकाराय सता विभूतय' इति प्राचीनानामचतुरचेतसामेवाम्नाय , नास्माकमर्वाचीनानाम् ।

प्रेक्षक —अलमुक्त्वा, अलमुक्त्वा । किञ्चिद् विचारय, यत् पुरा प्रकाश दर्शयित्वा यानाकर्षस्तेपामेव विश्वसितानासहसा पश्चात् कथमुदजासये ? त्वादृश प्रेमिपाश स्नेहदशासमन्वितोऽपि कालिमानमेव केवलमुद्भावयति, कलुपयति च जगतोस्य पवित्र-प्रेम-परिपूर्णां भ्रातृभावना स्ववासनाकालिम्ना ।

निकृष्ट प्रेमी

प्रेक्षक—प्रदीप ! तुम्हारा हृदय स्नेह से भरा हुआ है, तो फिर प्रेमपूर्वक आलिगन करनेवाले बेचारे शलभ को जला क्यो डालते हो ? क्या तुम्हे इस कार्य मे लज्जा नही आती ?

प्रदीप—यह लज्जा क्या बला है ? लज्जित होना वस्तुत मूढ़जनो का लक्षण है। अपने कार्य की सिद्धि के लिए यदि किसी की आहुति देनी पडे, तो उसमे दोष क्या है ? सज्जनों की विभूति परोपकार के लिए होती है, यह सिद्धान्त तो पुराणपथियो का है, आधुनिको का नही।

प्रेक्षक—बस-बस, बोलो मत। तुम्हे कुछ तो विचार होना चाहिए कि पहले प्रकाश दिखाकर जिसे आकृष्ट करते हो, उसी को फिर विश्वसित होने पर अचानक नष्ट कैसे कर देते हो ? तुम्हारे-जैसे निकृष्ट प्रेमी स्नेहवान् होकर भी केवल कालिमा ही उत्पन्न करते हैं और पवित्र प्रेम से परिपूर्ण इस जगत् की भ्रातृत्व-भावना को कलुषित किया करते हैं।

प्रायश्चित्तम्

प्रदीप —देवि ! निशे ! तवोत्सङ्गमध्युष्य यदा सकलमपि भुवनमविकल-मानन्दति, तदानीमेकाकी दुर्भाग्यभाजा प्रथमोऽहमेवानिश प्रज्वलामि। यद्यपि शान्त्यै स्पृहयति भृश ममेदमशान्त चेत , किन्तु न क्षणमपि ता स्प्रष्टुमीष्टे। हन्त ! किमिद जीवनम् ? मृत्युरप्यत शतगुण सुखयति।

निशा—प्रदीप ! नाय कस्यापीतरस्य दोष । स्वयमेव समपीपदस्त्व-मेतत् कृत्स्नमपि दुःखम्। शलभस्तोऽपि तव योऽजीजनदानन्द , स एव सम्प्रति दुःखनया पर्यणसीत्। अद्य प्रभृति निपुणमेतन्निश्चिनु, योऽपरान् ज्वलयति, स स्वयमपि नितरा ज्वलति।

प्रदीप —आम्, साम्प्रतमनुभवामि, सर्वथानुचितमेवानुष्ठित मया तत् कार्यम्। अनुशये भृशमेतर्हि। अज्ञानवशाद् यद् व्यधा तन्मे मिथ्या भवतु।

निशा—मैवमनुतपनस्य समय पूर्व, इदानी तु तवास्य महीयसो दुष्कर्मण शुद्धये सन्तत् प्रायश्चित्तमेव केवलमलम्। तत्राप्येतदस्त, यदमुना कर्मणा प्रज्वलज्जीवनम्, तथ्य च जगतीमज्ञानकृतमपि दुरित निस्तरतात्मानमिति।

प्रायश्चित्त

प्रदीप—देवि ! जब समस्त ससार तुम्हारी गोद मे पूर्ण आनन्द का अनुभव कर रहा है, तब अकेला मैं ही ऐसा अभागा हू कि उस समय भी निरन्तर जलता ही रहता हू। यद्यपि मेरा अशान्त मन शान्ति के लिए बहुत लालायित रहता है, परन्तु एक क्षण के लिए भी वह उसे पा नही सकता। यह क्या जीवन है ? इससे तो मरना भी कही अधिक सुखकर होता है।

निशा—प्रदीप ! यह किसी दूसरे का दोष नहीं, यह समस्त दु ख तो स्वय तुम्हारा ही उत्पन्न किया हुआ है। शलभ को जलाते समय तुम्हे जो आनन्नदानुभूति हुई थी, वही अव उस दु ख-रूप मे परिणत हो गई है। आज से यह अच्छी तरह निश्चित कर लो कि जो दूसरो को जलाता है, उसे स्वय भी जलना पडता है।

प्रदीप—हा ! मैं समझता हू कि मैंने वह सर्वथा अनुचित कार्य ही किया था। अब मैं उसके लिए बहुत-बहुत पश्चात्ताप भी करता हू। अज्ञानवश जो कुछ कर चुका, वह सब क्षन्तव्य हो जाना चाहिए।

निशा—पश्चात्ताप मात्र से दोप को धो डालने का समय तो बहुत पहले ही व्यतीत हो चुका है। अव तो तुम्हारे इस महान् दुष्कर्म की शुद्धि के लिए कोई वडा प्रायश्चित्त ही चाहिए और वह यही हो सकता है कि तुम आजीवन इसी क्रम से जलते रहो और जगत् को वतलाओ कि अज्ञानकृत पाप भी आत्मा को लिप्त करता ही है।

निर्वाणाय

प्रदीप ! किमु निर्वाणाय उद्युङ्क्षे ? सखे विरम, मा मुधैवमुद्युक्था । यद्यपि जानाति जगदिद यदस्तोक त्वया तपस्तप्तम्, तथापि कथमिव तद् विस्मरेद् यत् त्व स्नेहप्रियोसीति ।

सुहृद्वर ! मुमुक्षवस्त्वत्तोप्यतितम निर्वाणाय स्पृहयन्ति, किन्तु यावन्न स्नेह नि शेषीकुर्वन्ति तावन्न तेपि तत्पदमवाप्तुमीशते । त्व यत् साम्प्रतमेव निर्वातुकामोजनिष्ठास्तन्न साम्प्रतम् । पुरा स्नेहसिक्ताया स्वदशाया स्मर, मा मोघमुत्ताम्य । अन्त स्थामिमा दशामवगणय्य समयपरिपाक विनापि चेन् निर्वास्यसि, ततस्तवानेन मन कल्पितेन निर्वाणेन लोके नालोक , किन्तु तम एव विवृद्धिमाप्स्यति ।

कल्पित निर्वाण

प्रदीप ! क्या तुम निर्वाण[1] के लिए प्रयास कर रहे हो ? ठहरो, सखे ! यह व्यर्थ का प्रयास मत करो। यद्यपि ससार यह जानता है कि तुमने बहुत तपस्या की है, फिर भी वह यह कैसे भूल सकता है कि तुम स्नेहप्रिय— स्नेह चाहनेवाले हो।

सुहृद्वर ! मुमुक्षु-जन निर्वाण के लिए तुम्हारे से कही अधिक लालायित हैं, किन्तु जब तक स्नेह[2] को नि शेष नही कर देते, तब तक वे भी उस पद को नही पा सकते। तुम जो अभी से निर्वाण की कामना करने लगे हो, वह उचित नही है। पहले अपनी स्नेहसिक्त दशा—बाती को देखो और व्यर्थ की उतावल मत करो। इसकी उपेक्षा करके यदि तुम समय-परिपाक के बिना निर्वाण पा भी लोगे, तो तुम्हारे उस कल्पित निर्वाण से लोक मे प्रकाश नही, किन्तु अन्धकार ही फैलेगा।

---

१ 'निर्वाण' शब्द दीपक के लिए 'बुझना' अर्थ मे और अन्यत्र 'मोक्ष' अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

२ 'स्नेह' शब्द दीपक के लिए 'तैल' अर्थ मे और अन्यत्र 'राग' अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

उपयुक्त : समयः

दर्शक —खद्योत ! विजने वने निवसन् नास्य जगत परगुणोपेक्षित्व युग-सहस्रेणापि निवारयितु पारयिष्यसि । लोकोय खलु साम्प्रतमियान् सुलभालोक समजनि, यतोस्मिस्त्वादृश स्वल्पालोक प्राणी यद्युपेक्षितो भवेत् तन्न नाश्चर्यम् ।

समस्तमपि विष्टपमिद यदा चाकचिक्यालोकननिहितनिष्ठ बभूव, तदा मनुष्य क्वावसरे स्पृहयेदसदुपमाय तव तलिनाय तेज कणाय ? तत्रापि स्वोपेक्षाविरोधे स्वय तवैतावदौदासीन्यमपि त्वा विस्मर्तु जगत सहायमेवाजनि ।

अङ्ग ! नाद्य स कालो विराजते, यस्मिन् विपिनमुपवसन्तमपि गुणिन जना स्वयमेव मृगयमाणा गच्छन्ति स्म, भक्तिभावाभिभूतचेत-स्काश्च तमुपासीरन् अद्यत्वे तु स समय समागत , यस्मिन् गुणी स्वयमेव स्वगुणित्व साधयित्वा यावत् जनाना चक्षूषि विस्मयस्मेराणि न विदध्यात्, तावन्नहि कश्चित् त समादरणीयतयावलोकयितुमपि वाञ्छति ।

खद्योत —सखे ! सत्यमाख्यासि, परन्तु जगतोस्य सम्पूर्णापेक्षा पिण्डीभूयापि किं ममालोक स्वल्पमपि परासितुमर्हति ? तथैव च परा काष्ठा गताऽस्य निस्सीमा सहानुभूतिरपि किमु मम तेजसि स्वल्पीयसीमपि वृद्धि विधातुमलम् ? यदि नहि, कि ततस्तदुपेक्षाया भयम् ? का च सहानुभूतेर्लालसा ?

उपयुक्त समय

दर्शक—खद्योत ! निर्जन वन मे रहते हुए तुम इस जगत् की पर-गुण-उपेक्षा-वृत्ति को सहस्रो वर्षों तक भी दूर नही कर सकोगे। आज के ससार मे आलोक इतना सुलभ हो गया है कि तुम्हारे जैसा स्वल्प आलोक वाला प्राणी यदि उपेक्षित हो जाए, तो कोई आश्चर्य नही। सारा ससार जब चमक-दमक मे ही अपनी आस्था रखने लगा है, तब उसके पास ऐसा अवसर ही कहा रह जाता है कि जिसमे वह तुम्हारे इस सामान्य-से प्रकाश को देखने का विचार भी करे ? तुम स्वय भी अपनी उपेक्षा का विरोध करने मे इतने उदासीन रहे हो कि तुम्हारी उस उदासीनता ने तुम्हे भुला देने के लिए जगत् की सहायता ही की है।

प्रिय ! आज वह समय नही है, जबकि वन मे निवास करनेवाले गुणी को लोग स्वय खोज लिया करते थे और भक्ति-विभोर होकर उनकी उपासना किया करते थे। आज तो वह समय आ गया है कि जब तक गुणी स्वय ही अपने गुणो का प्रदर्शन करके लोगो की आखो को आश्चर्याभिभूत नही कर देता, तब तक कोई उसे आदर की दृष्टि से देखना तक नही चाहता।

खद्योत—मित्र ! सच कहते हो, किन्तु ससार की सम्पूर्ण उपेक्षा एकत्रित होकर भी क्या मेरे आलोक को मुझसे दूर कर सकती है ? उसी प्रकार उसकी असीम सहानुभूति भी क्या मेरे तेज मे जरा भी वृद्धि कर

उपेक्षापेक्षयोश्चक्षुर्भ्यामवलोकिताना गुणाना वस्तुवृत्त्या नात्र किञ्चित् प्रामाण्यम् । कथ च, एकत्र महानपि गुणो लघीयस्त्वेन भाति, अन्यत्र च लघुरपि स महीयस्त्वेन । अतएव गुणाना स्वरूपप्रकाशने स एवोपयुक्त समयश्चकास्ति, यत्र उपेक्षाकालस्य समाप्ति, अपेक्षाकालस्य च प्रारम्भ स्यात् ।

सकती है ? यदि नही, तो फिर मुझे उसकी उपेक्षा से क्यो भय हो और उसकी सहानुभूति की क्यो लालसा हो ?

वस्तुत उपेक्षा और अपेक्षा की आखो से देखे जानेवाले गुणो का यहा कोई प्रामाण्य नही माना जा सकता, क्योकि उपेक्षा की दृष्टि मे महान् गुण भी छोटा और अपेक्षा की दृष्टि मे छोटा गुण भी महान् दिखाई देने लगता है, इसलिए गुणो का मूल रूप जानने के लिए वही समय उपयुक्त है, जिसमे कि उपेक्षा-काल का अन्त होता है और अपेक्षा-काल का प्रारम्भ।

याथार्थ्यम्

दर्शक —खद्योत ! 'एष तुच्छ' इति निगद्य जनास्त्वामवजानन्ति, किन्तु तेषामेतत् कथन मामरुन्तुदमिव पीडाजनकमाभाति। शर्वरीसमये यदा त्वमन्तर्वण तारक इव दीप्यसे, तदा जगत सर्वोत्तमप्राणी मनुष्योपि त्वा द्रष्टु लालायितो भवति। स तव प्रकाशाय ईर्ष्यति। किमेतत् तवाऽसाधारणता नाभिव्यनक्ति ? सुनिश्चितमेतद् यत् त्व महानसि। आत्मविश्वासयुतेन त्वया स्वकीयेय महत्तानुभवनीया।

खद्योत —महोदय ! महत्ता लघुता चानुभवितु कस्यापि द्वितीयस्य लघुताया महत्तायाश्चापेक्षा जायते। उभयोरप्यनयो स्वत किमपि याथार्थ्य नास्ति, किञ्च उद्भवोप्येतयोररन्यस्थितिसापेक्ष एवास्ति। याथार्थ्य तु स्वत सिद्ध भवति, तस्यास्तित्व परमुखापेक्षि कथ भवितु शक्नुयात् ? मयि यत् किमपि परनिरपेक्षम्, तदेव यथार्थतया मम विद्यते, इति तथ्य यस्मिन् वासरेऽवसित भविष्यति, तद्वासरादारभ्य न कस्यापि महत्ताया गर्वो भविष्यति, न च लघुताया लज्जा।

मनुष्या मा तुच्छ जानीयुरुताहो महान्तम्, नैतस्मात् मम वास्तविकताया किमपि परिवर्तन जायते। यादृशोहमस्मि तत किञ्चिदपि स्वल्पतामधिकता वा चेन् मयि कश्चिद् विद्यात्, तत् तस्यैवाज्ञानद्योतक भवति।

यथार्थता

दर्शक—खद्योत ! यह तुच्छ है, ऐसा कहकर लोग तुम्हारी अवज्ञा करते हैं, किन्तु मुझे उनकी यह बात बडी पीडाजनक लगती है। रात्रि के समय जव तुम वन मे तारक की तरह चमकते हो, तब जगत् का सर्वोत्तम प्राणी मनुष्य भी तुम्हे देखने को लालायित हो उठता है। उसे तुम्हारे प्रकाश से ईर्ष्या होती है। क्या यह बात तुम्हारी असाधारणता को व्यक्त करने वाली नही है ? निश्चय ही तुम महान् हो। तुम्हें आत्मविश्वास के साथ अपनी महत्ता का अनुभव करना चाहिए।

खद्योत—महोदय ! महत्ता और लघुता का अनुभव करने के लिए किसी दूसरे व्यक्ति की लघुता और महत्ता की अपेक्षा होती है। इन दोनो मे स्वत कोई यथार्थता नही होती, क्योकि इनका उद्भव अन्य स्थिति सापेक्ष ही होता है। यथार्थता तो स्वत- सिद्ध होती है। उसका अस्तित्व परमुखापेक्षी कैसे हो सकता है ? मेरे मे जो कुछ पर-निरपेक्ष है, बस वही मेरा यथार्थ है। यथार्थता के इस तथ्य को जिस दिन लिया जाएगा, उस दिन से किमी को न महत्ता का गर्व होगा और न लघुता की लज्जा।

मनुष्य मुझे तुच्छ समझें चाहे महान्, उससे मेरी वास्तविकता मे कोई अन्तर नही आता। मैं जैसा हू, उससे थोडी-सी भी अल्पता या अधिकता का मेरे विषय मे यदि कोई ज्ञान करता है, तो वह उसके अपने ही अज्ञान का द्योतक होता है।

निसर्गजः प्रकाशः

दर्शक —खद्योत ! सूची-भेद्यान्धकारपरिपूर्णायामस्या तमस्विन्या क दर्शयसि स्वप्रकाशच्छटाम् ? सम्प्रति जगत सर्वाधिकमतिमानसुमान् स्वनामधन्य पुमान् वासरेऽनवरत परिश्रमणात् श्रान्त सन् विश्रान्तिमा-काङ्क्षन् नयनयमल निमील्य शयानो विद्यते । नेदानी स तवालोकमालो-कयितुमवसरदानाय समर्थोऽस्ति । प्रत्यूषकाले यदा स जागृयात् तदानीमेव त्व चेत् तत्र समागच्छे, तदध्वान चालोकाञ्चित विदध्या तर्हि स वहूपकृतो भविष्यति, कृतज्ञया महिष्यति च ते प्रकाशम् ।

खद्योत —सुहृद्वर ! तमसि एव प्रकाशस्यावश्यकता जायते । यो ध्वान्तकालेपि न मत्प्रकाशमपेक्षते स सहजप्रकाशकाले कथ तेनोपकृतो भविष्यति ?

नाह स्वालोक-विज्ञापन-निविष्ट-दृष्टि, यतोस्य निदिद्रासोर्निद्राभङ्ग विधित्सेयम् । सुखयतु निर्वाधमसौ सम्पुटितदृष्टिर्मणीवक-मृदुले स्वतलिमे प्रसारिताङ्ग यष्टि । ममाय प्रकाशस्तु निसर्गज ,नात्रकाचिदसहजभावस्य प्रादुश्चिकीर्षा, न च सहज भावास्यान्तर्धित्सा। कश्चिदपि प्रकाशाभिलाषी चेदस्योपयोगित्व विद्यात्, तर्हि निर्भयमुपयुनक्तु, नाह तत्र काञ्चिद् वाधामुपस्थापयिष्यामि । तथैव च तस्यानुपयोगित्वमाशङ्क्य चेत् कश्चित् तमुपेक्षेत, ततो न तेन मम किमपि दु ख भविष्यति ।

निसर्गज प्रकाश

दर्शक—खद्योत ! सूचिभेद्य अन्धकार से परिपूर्ण इस रजनी मे तुम अपनी ज्योति की छटा किसे दिखा रहे हो ? प्रस्तुत समय मे स्वनामधन्य मनुष्य, ज कि इस ससार का सबसे अधिक बुद्धिमान् प्राणी है, दिन के निरन्तर परिश्रम से श्रान्त होकर विश्राम लेने की चाह से आखें मूदकर सोया हु आ है। इस समय वह तुम्हारे आलोक को देखने के लिए अवसर प्रदान नही कर सकता। प्रात काल मे जब वह उठे, तब यदि तुम वहा आओ और उसका पथ प्रकाशित करो, तो वह बहुत उपकृत होगा और कृतज्ञ होकर तुम्हारे प्रकाश की महिमा गायेगा।

खद्योत—सुहृद्वर ! अधकार मे ही प्रकाश की आवश्यकता होती है। जो व्यक्ति अधकार के समय मे भी मेरे प्रकाश की अपेक्षा नही रखता, वह उसके द्वारा उस समय कैसे उपकृत होगा, जबकि प्रकाश सहज रूप से सर्वत्र फैला हुआ हो !

मेरा दृष्टिकोण अपने आलोक का विज्ञापन करते रहने का नही है; जो कि मैं प्रसुप्त मनुष्य के निद्रा-भग की चेष्टा करू। मेरी ओर से भले ही वह अपनी कुसुम-कोमल शैया पर पैर पसारकर और आखें मूदकर निर्बाध आनन्द करे। मेरा यह प्रकाश तो निसर्गज है। मैं न तो किसी असहज भाव का दम्भ करना चाहता हू और न ही किसी सहज भाव को छिपाना। प्रकाशेच्छु कोई भी व्यक्ति यदि मेरे प्रकाश की उपयोगिता समझे, तो निर्भयतापूर्वक उसका उपयोग करे, मुझे उसमे कोई आपत्ति नही होगी तथा अनुपयोगी समझकर यदि कोई उसकी उपेक्षा भी करे, तो उससे भी मुझे कोई दु:ख नही होगा।

शत्रु-विनाशः

खद्योत —किमु मनुष्यो ध्वान्ताद् बिभेति ? यदि नहि, कथ तर्हि स्वसद्मनि प्रकाशमानमपि प्रदीप निर्वापयति ? कथमुन्मिषितमपि लोचनयामल निद्राव्याजेन निमीलयति ? कथ वर्धिष्णोरपि तम प्रभावस्य विरोधे सर्वथा मौनमाधाय तिष्ठति ? कथ च सतत सतमस-विरुद्ध-व्यापारवतोऽस्मादृशा-स्तुच्छान् मत्वोपेक्षते ? किमित्थ स जय्यमपि दस्युमजेयपदे न स्थापयति ?

दर्शक—आ ! नावसितवान् त्वमिद रहस्यम्। तेज इव तमोपि अस्मासु मित्रीयतु, इति भावनया वयमुभयो समानतया सम्मान विदध्महे। प्रकाशे कार्यं कुर्मस्तमसि च कार्य-निष्पादने क्षीणा शक्ति पुनरर्जयाम ।

क्षण मन्यामहे, तमोस्माकमरातिरस्तीति, तथापि किमु नामशेषता-सम्पादनमेव केवल सपत्नविनाशस्य मार्ग ? यदि वय कमप्येकमपि परि-पन्थिन मित्र कुर्मस्ततो नि शेषशत्रु-सङख्यासु एकस्य नैयून्य निश्चितमेव भवतीति किमु नैष शत्रु-नाशप्रकारो व्यावहारिक स्यात् ? चिन्तन-प्रधानैर्मनुष्यैश्चेदयमेव सभ्य प्रकार समाश्रितस्तदा ते नोपालम्भार्हा , किन्तु धन्यवादार्हा एव सन्ति।

शत्रु-विनाश

खद्योत—क्या मनुष्य अधकार से डरता है ? यदि नही, तो फिर क्यो अपने घर मे जगमगाते हुए दीपक को बुझा देता है ? क्यो अपनी खुली हुई आखो को नीद के बहाने से बन्द करके सो जाता है ? क्यो अधकार के बढते हुए प्रभाव को रोकने के विषय मे सर्वथा मौन धारण करता है और क्यो अधकार का निरन्तर विरोध करने वाली हमारी जाति को तुच्छ समझकर उपेक्षित मानता है ? क्या वह इस प्रकार अपने द्वारा जीते जा सकने वाले शत्रु को अजेय नही बना देता है ?

दर्शक—खेद है कि इस रहस्य को तुम नही पहचान पाये। प्रकाश की तरह अधकार भी हमारा मित्र हो, हम इसी भावना से दोनो का समान रूप से सम्मान करते हैं। प्रकाश मे हम कार्य करते हैं, और अधकार मे उस शक्ति को पुन सचित करते हैं जो कि कार्य करते समय व्यय हुआ करती है।

एक क्षण के लिए यदि मान भी लें कि अधकार हमारा शत्रु है, फिर भी क्या शत्रु को मार देना ही उसके विनाश का एकमात्र मार्ग है ? यदि हम किसी एक भी शत्रु को मित्र बना लेते हैं, तो हमारे शत्रुओ की तालिका में से निश्चय ही एक सख्या कम हो जाती है। क्या शत्रु को मिटाने का यह प्रकार व्यावहारिक नही है ? चिन्तनशील मनुष्य यदि इसी सभ्य तरीके को अपनाते है, तो वे उपालम्भ के नही, किन्तु धन्यवाद के ही पात्र हैं।

अपराजेयः

खद्योत.—हहो ! मनुष्या ! जाग्रतु ! जाग्रतु ! अनुनिद्राण विनाश मुख व्यादाय अवसर प्रतीक्षमाणस्तिष्ठति, शाश्वतविरोधिता पुष्णत् तमश्च तस्य साहाय्ये बद्धपरिकरो भाति । एतादृशि विपत्परम्परापर्युक्षितेऽनेहसि जागर्यैव रक्षा-दक्षा, परन्त्विदानी परममप्येतद् रहस्यमतिशयबलाद् विस्मृतिगर्भे नीतमिव चकास्ति । न जाने को लाभोस्य मूलेन्वभावि मनोरपत्यै ?

दर्शक·—सखे खद्योत ! निश्चप्रचमेष मनुष्यो न विनाशमीहते, स तु तस्मै असूयति । एतदेव कारणम्, यतस्तमस्ततिन्यस्तबाधाभिरसकृत् स्खलितपदन्यास अनेकशोऽनभीप्सितपतनसमाक्रान्तोपि च स तत्काल-मुत्थाय पुन प्रतिष्ठते ।

अनया निरन्तरगमनप्रवृत्त्या श्रान्तस्य तस्य पुन बलमर्जयितु विश्रान्तिरपि कदाचिदपेक्षणीया भवति, किन्तु किमेतावता एव विनाशस्त परासिष्यति ? असम्भवमेतत्, मानवस्य पराभवो नेयान् सरल । प्रत्यव-स्थातार दृढमाक्रान्तु यथासमय सेनाया प्रतियानमिव तस्यैष चरणन्यासो विनाशस्यैव नाशाय भविष्यति, मनुष्य सुनिश्चितमपराजेय एव स्थास्यति ।

अपराजेय

खद्योत—अरे मनुष्यो ! जागो, जागो !! सोने वालो के पास उनको निगलने के अवसर की प्रतीक्षा करता हुआ विनाश खडा है और साथ ही मनुष्य का शाश्वत विरोधी अधकार भी उसकी सहायता मे तत्पर है। ऐसे विपत्ति के समय मे एकमात्र जागरण ही रक्षा कर सकता है, परन्तु इस परम रहस्य को भी अतिशय बलपूर्वक विस्मृति के गर्भ मे ढकेल दिया गया प्रतीत होता है। पता नही, इसके मूल मे मनुष्यो ने कौन-सा लाभ देखा है ?

दर्शक—सखे खद्योत ! निश्चय ही मनुष्य विनाश को नही चाहता। वह तो उससे घृणा करता है। यही तो कारण है कि अधकार के द्वारा उपस्थित की गई वाधाओ से वार-बार ठोकर खाकर तथा अनेक बार अनिष्ट रूप से गिर पडने पर भी वह तत्काल उठ खडा होता है और फिर आगे प्रस्थान कर देता है।

निरन्तर गमन करने की इस प्रवृत्ति से जव वह थक जाता है, तब फिर से वल अर्जित करने के लिए उसे कभी-कभी विश्राम की भी अपेक्षा रहती है। किन्तु क्या इतने मात्र से ही विनाश उसे परास्त कर देगा ? यह असम्भव है। मनुष्य को पराजित करना इतना सरल नही है। शत्रु पर अधिक दृढता से आक्रमण करने के लिए उपयुक्त अवसर पर कभी-कभी सेना को वापस मोड लेना होता है, उसी प्रकार का उसका यह चरणन्यास है, ज कि विनाश के ही नाश का कारण होगा। मनुष्य सुनिश्चित रूप से अपराजेय ही रहेगा।

किमीयो दोषः ?

निर्झर —शिखरिन् ! चिरमरौत्सीद् बलेन मामितो यियासुम्, परमद्यत्वे नाहं क्षणमपि तव कारागारमुपविवत्सामि । यावन्नात्मबलं पर्यच्छिनद तावदेव भूयोभूयस्तवानुचितं निग्रहं सोढ्वापि सन्ततमनुग्रहमभ्यलाषिषम् । साम्प्रतं सम्यगवाय यत् कश्चिदपि सत्ताधीशः न कमपि कदाचिदनुक्रोशेन स्वतन्त्रं चिकीर्षति ।

शिखरी—अङ्ग ! किमत्र पारतन्त्र्यमनुभवसि ? हन्त ! नात्मस्थीभूय क्षणमेकमप्यध्यासीर्यन्मादृशश्चेन्नात्र संरक्षकतां बिभृयात्, ततः स्वहिताहितानभिज्ञस्त्वादृशो वातरायणः कदापि विनाशपथमनुसरेत् । विवेकपराङ्मुखतां बिभ्राणस्त्वं मादृशं हितैषिणमपि द्वेक्षीति महदाश्चर्यम् ।

निर्झर —इनमन्य ! नेदं तवैव किञ्चिदागः, किञ्च समसर्गत्वात् समेऽपि शास्तारः 'विनङ्क्ष्यसि' इति निर्मूलमातङ्कमातत्य स्वतन्त्रताभिलाषून् सरलान् प्रतिष्ठासूनविरलं भापयन्ते, गर्धयन्ते च निस्त्रपमनेकशः प्रलोभनानाय विस्तार्य । परमेतर्हि त्वादृग्भिरीशितृभिराश्रितानामुज्ज्वले यद् विनाशसाध्वसमुच्चैर्व्यतायत, तदस्मादृग्भिरपनिनीषुभिरवश्यमपनेष्यते । स्वत एव तदानीं जगत् सम्यगवगमिष्यति, यदेते हितैषिमानिन एव परप्रगतिमसहमानास्तद् विरोधे प्रबलमुत्तिष्ठन्ते ।

शिखरी—प्रतिष्ठासो ! नाहं स्वातन्त्र्यं प्रत्यूहामि, परन्तु यावद् योग्यता नार्जिता स्यात् तावत् त्वामस्मात् पथः कर्तव्यनिष्ठयावश्यं वारयामि । अपरिपक्वाः स्वतन्त्रतया नितरामभिशप्यन्ते, नातो यद् भीपये तदपार्थमेव । योग्यीभूय यदि कश्चिद् यियासेत्, कस्तत्र सुमना विहन्यात् ?

किसका दोष ?

निर्झर—पर्वत ! मैं यहा से चले जाने को सदैव उत्सुक रहा हू, फिर भी तुमने मुझे चिरकाल से बलपूर्वक रोके रखा है, किन्तु अब तो एक क्षण के लिए भी मैं तुम्हारे कारागार मे नही रहना चाहता। जब तक मैंने अपने आत्म बल को नही पहचाना था, तब तक बार-बार तुम्हारे अनुचित निग्रह को सहकर भी कृपाकाक्षी बना रहा, किन्तु अब अच्छी तरह से जान चुका हू कि कोई भी सत्ताधीश कभी किसी को दया से प्रेरित होकर स्वतन्त्र करना नही चाहता।

पर्वत—अरे ! क्या तुम यहा परतन्त्रता का अनुभव कर रहे हो ? खेद है कि आत्मस्थ होकर एक क्षण के लिए भी तुमने यह नही सोचा कि यदि मेरे-जैसा सरक्षक नही होता, तो तुम्हारे-जैसा पागल व्यक्ति कभी का विनाश की ओर चल पडता। वस्तुत अभी तक तुम अपने हिताहित को नही पहचानते। आश्चर्य तो इस बात का है कि मेरे-जैसे हितैषी से भी तुम अपने ही अविवेक के कारण द्वेष रख रहे हो।

निर्झर—पर्वत ! अपने आपको स्वामी समझने वालो मे से केवल यह तुम्हारा ही दोष नही है। सभी शासक एक ही स्वभाव के होते हैं, अत वे स्वतन्त्रता-प्रेमी सरल व्यक्तियो को विनाश का आतक फैलाकर डराने तथा प्रलोभनों का जाल बिछाकर फसाने का बार-बार प्रयास करते हैं। किन्तु तुम्हारे-जैसे स्वयभू स्वामियो द्वारा फैलाया गया विनाश का यह भय शासितो के हृदय से अब अवश्य ही दूर कर दिया जाएगा। ससार तब स्वय ही यह जान जाएगा कि तथाकथित हितैषी ही दूसरो की प्रगति मे रोडे बनते हैं।

निर्झर—कर्तव्ये कियती त्वादृशा तत्परतेति नाजानन्त सम्प्रति धिषणावन्त यत् साहृयोग्येन शरदा शतैरपि नाजनिष्ट कश्चित् स्वातन्त्र्यपात्रम्, ततो भविष्यति भविष्यतीत्याशासनमपि दुराशामतिरिच्य नान्यत् किमपि। वस्तुतत्त्व त्वेतत्, यच्छासिताना सतीमपि योग्यता-मुरीकर्त्तुं शास्तृषु योग्यतैव न भवति। क्षण मन्येतापि वशवदानामयोग्य-त्वम्, तथाप्यय किमीयो दोष ? किमु शास्त्रा योग्यतापादनस्य कश्चिदवसरोप्यदायि तेभ्य ?

पूर्णमपावृतः

दर्शक —निर्झर ! दयावानय सानुमान् कियान् श्रेयान् यत् त्वादृशाय तरलात्मनेपि आश्रय व्यतरत्, किन्तु सद्य पातिनामग्रणीस्त्व कार्तघ्न्येन सकलमपि तदुपेक्ष्य तेनैव सह विरोधमुदवीभव , किमेतद् युक्तमकार्षी ?

निर्झर —एतर्हि यावानाटोपो विज्ञापन च चकास्ति न तावत् कार्यम्। अत एव यादृश सौन्दर्य बहिरस्य जगतो भाति, न तत शताशमपि तदन्तरवाप्यते। दृश्यतामसौ दयावता धुर्य सानुमान्, य खलु विपदग्रस्त मा निगृह्य, परायत्तीकृत्य च एतादृशे कारागारेऽरुणद् यत्र बहिर्विलोकनमपि दोषत्वेनाभिमतम्। न केवलमनेन व्यक्तित्वमेव मामक पूर्णतोऽप्यधित्सत्, अपि तु भूतलादस्तित्वमपि मे विलुप्तमचिकीर्षीत्। एतादृशेऽवसरे विरोधमुद्भाव्य सघर्ष कुर्यामित्येव मम सम्मुख मार्गोऽवशिष्ट ।

बहिरङ्गामवस्थामालोक्यैव भवादृशस्तटस्थदृष्टयोपि चेत् तत्त्वचिन्ताया चेतो विपर्यस्येरन्, कस्तदा परवता विचारसरर्णि समूहिष्यति, कश्च निरसिष्यते छद्मवेषिणामेषामप्रतिम मदम् ? महोदय ! स्वतन्त्रतार्थं यद् व्यधा तत् कथमिव कार्तघ्न्यममस्त भवान्, नाहमित्यवगन्तुमप्यशकम् ।

दर्शक —वाचाट ! स्वतन्त्रतार्थमेव यद्यचलाधरेण सह त्वमियदयुद्धास्तर्हि कथमिव शैवलिन्यै स्वात्मा समर्पित ? किमेतद् गर्त्तान्निष्क्रम्यो-

पूर्ण स्वतन्त्र

दर्शक—निर्झर ! तुम्हारे-जैसे चचल स्वभाव वाले व्यक्ति को भी आश्रय प्रदान करनेवाला यह दयालु पर्वत कितना अच्छा है ? किन्तु तुम भी प्रथम कोटि के पतनशील व्यक्ति निकले, जो कि कृतघ्नतापूर्वक पर्वत के सभी उपकारो को भुलाकर उसी के विरोधी वन गए ? क्या यह तुमने उचित किया है ?

निर्झर—महामना ! आजकल आटोप और विज्ञापन का जितना बोल-वाला है, उतना कार्य का नही। यही कारण है कि बाहर से इस ससार का जो सौन्दर्य दिखाई देता है, अन्दर मे उसका शताश भी तो नहीं होता। दयावान् कहे जाने वाले इस पर्वत को ही देखो न, जब मैं किसी दुर्दिन मे विपत्तियो का मारा हुआ इसके पास आया था, तव इसने मुझे स्थान तो अवश्य दिया, पर वह स्थान एक कारागार था, वहा मुझे कभी बाहर की ओर झाकने तक नही दिया जाता था। इसने अपनी ओर से मेरे व्यक्तित्व को ही पूर्णत नही ढक दिया था, अपितु स्वय मुझे ही जगत् के पटल पर से विलुप्त कर दिया था। ऐसी स्थिति मे मेरे सामने अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिए विरोधी वनकर सघर्ष करने के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग ही नही रह गया था। यदि तुम्हारे-जैसे तटस्थ दर्शक भी केवल वाह्य अवस्थाओ को देखकर ही तत्त्व-चिन्तन मे विपरीतता ले आयेंगे, तो फिर कौन परतन्त्र व्यक्तियो की विचारधाराओ को समूहित करेगा और कौन इन छद्मवेशी दयालुओ के अप्रतिम घमड को दूर करेगा ? महोदय ! स्वतन्त्रता के लिए किये गये मेरे इस विरोध को तुमने कृतघ्नता कैसे मान लिया, यह मैं विलकुल नही समझ सका हू।

दपाने निपातवन्नास्ति तव मौढ्यम् ? कथमिव विचारचतुरस्य ते शेमुषी नात्र विषये लेशतो व्यचीचरत् ?

निर्झर —महाशय ! शैलस्थो यावानुपेक्षितोहमासम्, ततोप्यतितम नितरामपेक्षितोस्म्यत्र । न मामकमशतोप्यनशदिह स्वायत्त्यम्, न च क्वचन कार्यजाते समागतमणीयोपि पारायत्त्यम् । उपेक्षा हि पारतन्त्र्य-मनुभावयति मानवमनिशम्, अपेक्षा च स्वायत्तवैयक्त्यम् । अत एव सा प्रत सर्वस्व समर्प्यापि पूर्णमपावृत स्वयमहमेव मम स्वामी ।

दर्शक—यदि स्वतन्त्रता के लिए ही तुमने पर्वत से इतना झगडा किया था, तो फिर नदी को अपना स्वत्व क्यो समर्पित कर दिया ? क्या यह गढे से निकलकर कूप मे पडने जैसा नही है ? विचार-चातुर्य से परिपूर्ण तुम्हारी बुद्धि इस विषय मे कुछ भी कैसे नही सोच सकी ?

निर्झर—महाशय ! पर्वत के पास मैं जितना उपेक्षित अवस्था मे था, यहा उससे कही अधिक अपेक्षित अवस्था मे हू । यहा न तो मेरी अशमात्र स्वतन्त्रता ही नष्ट हुई है और न ही किसी कार्य मे अशमात्र परतन्त्रता आयी है । हर किसी को उपेक्षा परतन्त्रता का अनुभव कराती है और अपेक्षा स्वतन्त्र व्यक्तित्व का, इसीलिए अब मैं सर्वस्व सौंपकर भी पूर्ण स्वतन्त्र हू और स्वय अपने आपका स्वामी हू ।

कीदृशं मित्रम् ?

अनुयोक्ता—स्वनिलये स्थेमानमभजमान प्रतिवेल व्याकुलोच्चलो यायावरतामाचरन् त्व कोसि वत्स ? कुत आगतोसि ?

निर्झर —अस्मि मनस्विन् ! मित्रावाप्तिमनोरथ सार्थमापादयितुमुत्कमना , उपयुक्त सवयसमन्वेषयन्, अद्यावधि तदनुपलब्धेरप्यनाहताश , प्रयासान्नालभ्य किमपीति कृतविश्वाम 'निर्झर', समागा च सुदूरवर्तिन सानुमत सकाशात् ।

अनुयोक्ता—शैलादागतोसि ? प्रलम्बमध्वान वगाह्य समागा । स्थपुटोय खलु निगम, सनच्चलनादक्लमश्चेत् तर्हि क्षण विश्राम्य । स्वस्थीभूय लक्ष्य प्रति पुन प्रस्थातुमर्हसि ।

निर्झर —नायमवसरो विश्रान्त्या । ये समारब्ध कृत्यमसम्पूर्य मध्ये विश्राम्यन्ति नितरामकृतकार्यास्ते पश्चादनुशेरते । तदवल्या क्षणमपि स्थातुमह न वश्मि। मम निगमक्लमापनोदाय सम्मदाय च सुतरा कार्यसातत्यमेव कल्पते, इति विश्वसिमि ।

अनुयोक्ता—कार्म ! माऽऽय शूलिको भू । यदन्वेष्टव्य तद् धैर्येणान्वेपय। साफल्य तु कर्मठानामनिश द्वार निषेवते, किं ततो मोघमुत्ताम्यसि ?

निर्झर —महोदय ! कार्यदौष्कर्यमलङ्कर्मीणाना धैर्यमपि ध्वसयति । पुरा चिररात्राय शनै शनै प्रायतिषि, पर नालप्सि किमपि फलम् । सम्प्रत्यत एव कार्यदौष्कर्यानुपातेनैव यदातदात्वमुपेक्ष्य दृढ प्रयते ।

अनुयोक्ता—अनुमोदेह ते विचारान्, परन्तु एतज् जिज्ञासामि यद्

कैसा मित्र चाहिए ?

पृच्छक—वत्स ! अपने जन्म-स्थान को छोडकर प्रतिक्षण व्याकुल चित्त बने हुए यायावर (घुमक्कड) का जीवन व्यतीत करनेवाले तुम कौन हो ? कहा से आए हो ?

निर्झर—मनस्विन् ! मैं निर्झर हू, सुदूरवर्ती पर्वत से आया हू । मित्र-प्राप्ति के अपने मनोरथ पूर्ण करने के लिए उत्कठापूर्वक मैं किसी उपयुक्त मित्र की खोज मे हू । अभी तक मुझे कोई ऐसा मित्र नही मिला है, फिर भी मैं निराश नही हुआ हू, क्योकि मेरा विश्वास है कि प्रयास से कुछ अलभ्य नही है ।

पृच्छक—पर्वत से आए हो ? बहुत लम्बा और बहुत ऊबड-खाबड मार्ग पार किया है तुमने । निरतर चलते रहने से यदि थक गए हो, तो यहा कुछ विश्राम कर लो । स्वस्थ हो जाने के पश्चात् अपने लक्ष्य की ओर पुन प्रस्थान कर देना ।

निर्झर—यह विश्राम का समय नही है । जो व्यक्ति अपने प्रारम्भ किये हुए कार्य को पूरा करने से पहले ही विश्राम करना चाहते हैं, उन्हे सदैव पश्चात्ताप करना पडता है । मैं एक क्षण के लिए भी उन व्यक्तियो की श्रेणी मे नही आना चाहता । मेरा विश्वास है कि थकावट दूर करने और प्रसन्नता बनाए रखने के लिए कार्य-सातत्य ही उत्तम उपाय है ।

पृच्छक—कर्मशील ! इतने उतावलेपन से काम न लो । जिसे खोजना है, उसे धैर्यपूर्वक खोजो । सफलता तो कर्मठ व्यक्तियो के द्वार पर ही पडी रहती है, फिर यह इतनी उतावली क्यो ?

निर्झर—महोदय ! कार्य की दुष्करता बडे-बडे समर्थ व्यक्तियो के धैर्य

वृहत्यामियत्यामट्यायामपि किमु नामेलीत् कोप्येतादृश सखा, य. पूरयेत् तवाभिलापाम् ! चेल्लेशतोऽपि न दूयते ते चेतस्तर्हि कीदृशमाशससे सखायमित्यपि समाचक्ष्व, शुश्रूसतो मे प्रवणे श्रवणे ।

निर्झर —मान्यवर। अहमेतादृश सहृदय सुहृद मृगये, यो मत्लघीयस्त्वे स्वमहीयस्त्व विलीनीकुर्यात् । यस्य चेत स्वगरिम्ण समर्पणे न विचलेत्, न च सन्दिह्यात् मल्लघिम्न. स्वीकरणे न म्लायेत्, न च शोचेत् ।

को भी हिला देती है। पहले चिरकाल तक मैंने कार्य को धीरे-धीरे करने का ही प्रयत्न किया था, किन्तु कोई फल नही मिला। अब इसीलिए समयाभाव का बहाना छोडकर कार्य की दुष्करता के अनुपात से ही प्रयत्न कर रहा हू।

पृच्छक—मैं तुम्हारे विचारो का अनुमोदन करता हू, परन्तु यह जान लेना चाहता हू कि इतना लम्बा पर्यटन करने पर भी क्या तुम्हें कोई ऐसा मित्र नही मिला, जो तुम्हारी अभिलाषा को पूर्ण कर सके? यदि तुम्हे कोई कष्ट न हो, तो बताओ कि तुम्हे कैसा मित्र चाहिए? मेरे ये कान तुम्हारी बात सुनने के लिए बहुत उत्सुक हैं।

निर्झर—मान्यवर! मैं ऐसे सहृदय मित्र की खोज मे हू, जो मेरी लघुता मे अपनी महत्ता को विलीन कर सके। जिसका चित्त अपनी गरिमा को मुझे समर्पित करते समय विचलित न हो, सदिग्ध न हो और मेरी लघुता को स्वीकार करते समय म्लान न हो, शोकग्रस्त न हो।

साम्यावाप्तिः

अध्वन्य —निर्झर ! शैलोत्सङ्ग परिहाय नीरसमवनितल सरसङ्गयितुमु-दन्याकुल जन्युकुल च प्रीणयितु विश्वम्भराया तवावतारो नितरामभि-नन्द्य., किन्तु यदन्ते सलिलनिलयमकूपारमुपतिष्ठसे तन्नास्मादृशाय स्वायत्तविचाराय रोचते ।

सुहृद्वर ! स्वात्मान तत्र विलयीकृत्य, सुधासोदर स्वसलिल क्षारीकृत्य च किमन्तर्गडु तमुदरपिशाचमुत्साहयसि ? कथ च हिमोज्ज्व-लमाविलयसि स्वकीय यशः पुरुहेणानेन कुपूयाभिज्ञानेन ?

निर्झरः—युक्तमाचक्षे पान्थ ! किन्तु गुणशतप्रमुख तत्रैकमेतादृश साम्य नाम तत्त्व चकास्ति; यन्निसर्गत समाकर्षति मन ! समतावाप्तये तत्रस्थमवगुणसहस्रमपि जीवनाप्त्यै क्लेशसहस्रमिव सुसहम् ।

त्व चेदेकवारमपि साम्यरस लेक्ष्यसि, ततोऽवश्य वेत्स्यसि यत् सर्व क्षारीकृत्यापि काम्या साम्यावाप्तिर्लाभायैव जायते ।

समता की प्राप्ति

पथिक—निर्झर! पर्वत की गोद को छोडकर शुष्क धरातल को सीचने और पिपासित प्राणियो को तृप्त करने के लिए तुम्हारा धरती पर उतर आना बडा ही प्रशसनीय कार्य है, किन्तु अन्त मे तुम अपार जल-राशि से भरे हुए समुद्र मे मिल जाते हो, यह कार्य हमारे जैसे स्वतन्त्र-धर्मा व्यक्तियो को रुचिकर प्रतीत नही हो सकता।

मित्रवर! अपने आपको समुद्र मे विलीन कर और अपने अमृत-तुल्य मीठे पानी को खारा बनाकर क्यो उस पेटू समुद्र का उत्साह बढा रहे हो? हिम-सदृश अपने उज्ज्वल यश को न जाने इस अत्यन्त कुत्सित कलक से तुम क्यो मलिन बना रहे हो?

निर्झर—पथिक! तुम ठीक कह रहे हो, किन्तु मुझे वहा साम्य नामक एक ऐसा तत्त्व प्राप्त होता है, जो स्वभावत ही मन को आकृष्ट कर लेता है। जिस प्रकार जीवित रहने के लिए सहस्रो कष्ट सहर्ष सह लिये जाते हैं, उसी प्रकार समता की प्राप्ति के लिए वहा के सहस्रो अवगुणो को सह लेना भी कोई कठिन नही है।

पथिक! यदि तुम एक बार भी साम्य रस का मधुर आस्वादन कर पाते, तो अवश्य जान जाते कि सब कुछ हारकर भी यदि एक समता को प्राप्त कर लिया जाए, तो भी वह सौदा लाभ का ही होगा।

मैधिर्यम्

निर्झर —दूरमपसरत, यूय दूरमपसरत। 'कार्यं वा साधयामि देह वा पातयामि' इति सङ्कीर्य स्वपथे यान्त मा मा विहत।

दृषदः—निर्झर! मा मुह, साम्प्रत बालभूयमहित्वा यद् राभस्येन अविचारकारिता पुष्णासि, तत् ते सस्कृतविचारस्य पश्चादनुशयाय एव केवल भविता। यद्यपि तीव्रतमा जिगमिषा त्वा त्वरयति, तथापि हितवाक्यमस्माक प्रत्येतुमर्हसि। वयस्थीभूय निरवग्रह याया, तदा नास्मासु काचिदर्कतूलतुल्यमपि त्वा व्याहनिष्यति।

निर्झर —कृत्य पूर्वमुत्साहमपेक्षते, पश्चाद् वयः। बाला सोत्साहास्तत् साधयन्ति, यद् युवानो यातयामा वा विगलितोत्साहा नाजन्म साधयितुमीशते। यौवनमागमयता स एव; य कर्तव्योपेक्षा सोढव्या मन्वीत।

मम हितैषिण्यो धन्यवादपात्र भवत्य, किन्तु हितकामनयाऽलमनया या प्रगतिमपि विरुणद्धि। यदवश्यकृत्य तदनेनैव मुहूर्त्तानपेक्षिणा क्षणेन प्रक्रमेय, एतदेव मैधिर्यमिति सुनिश्चितो ममाम्नाय।

बुद्धिमत्ता

निर्झर—दूर हट जाओ, चट्टानो ! दूर हट जाओ । 'करूगा या मरूगा' का व्रत लेकर मैं अपने मार्ग पर बढ रहा हू, तुम इसमे विघ्न मत डालो ।

चट्टान—मूर्ख न बनो, निर्झर ! तुम बालक हो, उतावलेपन मे बिना सोचे जो काम कर रहे हो, वह समझदार होने पर तुम्हारे लिए पश्चात्ताप का ही कारण बनेगा । यद्यपि आगे बढने की तीव्र अभिलाषा तुम्हे प्रेरित कर रही है, फिर भी हित के लिए कही गई इस बात पर तुम्हे विश्वास करना चाहिए । युवक होने पर तुम बेखटके जा सकते हो । उस समय हमारे मे से कोई भी तुम्हारे मार्ग मे किंचित्मात्र व्याघात नही करेगा ।

निर्झर—कर्तव्य के लिए उत्साह पहले अपेक्षित है, अवस्था पीछे । उत्साही बालक उस काम को कर दिखाते हैं, जिसे उत्साहहीन युवक और वृद्ध सारा जीवन लगाकर भी नहीं कर सकते । यौवन की प्रतीक्षा वे ही करें, जो कर्तव्य की पुकार को सुनी-अनसुनी कर सकते हो ।

मेरे हित की कामना करने के लिए तुम धन्यवाद के योग्य हो, किन्तु उस हित-कामना का क्या अर्थ हो सकता है, जो प्रगति का भी विरोध करनेवाला हो ? मेरी तो यह सुदृढ धारणा है कि जो आवश्यक कर्तव्य हो, उसे किसी मुहूर्त्त की प्रतीक्षा किए बिना इसी क्षण से प्रारम्भ कर देना चाहिए, इसी मे बुद्धिमत्ता है ।

कपोताः

कपोता ! अद्य यूय शान्त्या प्रतीकत्वेन मता ।, अय निरुपायो मनुष्य , यस्य भागधेये शान्त्यावस्थान नैव लिखित भाति, युष्मज्जीवनाय ईर्ष्यति। यद्यपि यूय नाद्यावधि साधारणै कलहैस्तु विरतिमलब्ध्वम्, परन्तु प्राणापहारिणो भयङ्कररणान्निरन्तरमुपरता ,एतदेव युष्माक शान्तिमय-जीवनस्य प्रथम सूत्रम् ।

सभ्यत्वेनाख्याताना पुसा कलहो व्यक्तित जार्ति, जातितो राष्ट्र, राष्ट्रतश्च विश्वमभिव्याप्य परस्पर-विनाशस्य हेतुर्जायते । मनुष्योऽद्य न केवल व्यक्तेर्विनाशक एव, किन्तु जातीना राष्ट्राणा च विनाशक. सन् विश्व-विनाशकपदमापेदानो विद्यते ।

सरलाशया पक्षिण ! व्योम्नि उड्डीय स्वकीयान् पक्षाश्च समास्फाल्य किमु यूय मनुष्याय इति निवेदयितु यतध्वे, यत् कलहस्य प्रसारो नहि, किन्तु समाहार एव वरीयान् ? वस्तुतो यदि यूयमित्येव चिकथयिपथ, तर्हि युष्माकमिम सन्देश श्रुत्वा मनुष्योवश्य सावधानो भविष्यति, शान्त्यै च प्रयतिष्यते। प्रियपारावता ! एकवार यूय पुनरेन सन्देशमुद्घोषयत ।

कबूतरो !

कबूतरो ! आज तुम शान्ति के प्रतीक माने जा रहे हो। बेचारा मनुष्य, जिसके भाग्य मे शान्ति से बैठ पाना नही लिखा है, तुम्हारे जीवन से ईर्ष्या करने लगा है। यद्यपि तुम साधारण झगडो से तो अभी तक विरत नही हो सके हो, परन्तु प्राणहारी भयकर युद्ध मे उपरत अवश्य रहे हो, यही तुम्हारे शान्तिमय जीवन का प्रथम सूत्र है।

सभ्य कहे जानेवाले मनुष्य का झगडा व्यक्ति से जाति, जाति से राष्ट्र और फिर विश्व मे फैलकर मानव-समुदाय के परस्पर विनाश का कारण बन जाता है। मनुष्य आज व्यक्ति का नाशक ही नही, किन्तु विभिन्न जातियो और राष्ट्रो का नाशक होने के साथ-साथ विश्व-विनाशक बनता जा रहा है।

सरल पक्षियो ! आकाश मे उडकर और अपने पख फडफडाकर क्या तुम मनुष्य को यही कहने का प्रयास कर रहे हो कि कलह फैलाना अच्छा नही है, किन्तु उसे समेट लेना ही अच्छा है। सचमुच यदि तुम यही कहना चाहते हो, तो तुम्हारे इस सन्देश को सुनकर मनुष्य अवश्य सावधान होगा और शान्ति का प्रयत्न करेगा। प्रिय कबूतरो ! तुम एक बार अपने शान्ति-सन्देश को फिर से दुहराओ तो !